चतुर्थस्तुतिनिर्णयः

न्यायांभोनिधि-श्रीमद्-आत्मारामजी
आनंदविजयजी महाराज विरचितः।

(अनुष्टुप् वृत्तम्)

पक्षपातं परित्यज्य, तटस्थीभूय सत्वरं॥ बुद्धि
मद्भिर्विलोक्योयं, चतुर्थस्तुतिनिर्णयः ॥ १ ॥

यह ग्रंथ
राधणपुरके संघतरफसें शेठ मोहन
टोकरसीकी पहेडीवालेके आज्ञासें
मुंबईमें
निर्णयसागर मुद्रायन्त्रमें
शा० भीमसी माणेकने छपवाकर
प्रकाशित किया.

स १९४४ इस्वी १८८८

प्रस्तावना.

विदित होके अनादि कालसें प्रचलित हुआ नया ऐसा परमपवित्र जो जैनमत है, परंतु इस हुंमा अवसर्पिणी कालमें नस्मग्रहादि अनिष्ट निमित्तोंके मिलनेसें अशुन्न मिथ्यात्व मोहादि निबिड कर्मोंके उदयवाले वहोत जीव होते नये, वो बहुलकर्मी जीवोमेंसे कितनेकने तो अपने कुविकल्पकेही प्रन्नावसें, और कितनेक तो परन्नवका नय न रखनेसें मात्र अपने मुखसें जो कोइ वचन निकाला होवे तिसकों कोइ असत्य प्रपंचसेंन्नी सत्य करके लोकोंके हृदयमें स्थापन करना चाहीयें ऐसें हठ कदाग्रहसें, और कितनेकने तो कोइ दूसरेसें इर्ष्या होनेसें उसकों जुठा बना कर अपना नाम वडा करनेके लीये, और कितनेकने तो अपने अरु अपने पक्षवालेके तरफ धर्म माननेवाले वहोत मनुष्योंका समुदाय मिले तो पेट नराइ अछी तरेहसें चले इसी वास्तें मतन्नेद करके कोइ नवीन पंथ प्रचलित करना ऐसी बुद्धिसें, इत्यादि औरन्नी विचित्र प्रकारके हेतुयोंसें यह शुद्ध आत्मधर्म प्रकाशक जैन

मतके नामसेंन्नी प्रस्तुत अनेक प्रकारके पुरुषोने अनेक तह्रेके मत उत्पन्न करेथे तिनमेंसें कितनेक तो नष्ट हो गये, अरु कितनेक वर्त्तमान कालमें विद्यमान है, इतनेपरन्नी संतोष न न्नयाके अबतो बस करे ?

आगेही बहुत जनोने जैनमतके नामसें जैन मतकों चालनी समान न्निन्न न्निन्न मार्गका प्रचार कर रक्का है. इतनाही बहोत हूआ तो फेर अब हम काहेकों नवीन मत निकाले? ऐसी बुद्धि जिनोमें नही है वे अबन्नी नवीन पंथ निकालनेंमें उद्यम करते हैं. संप्रतिकालमें तपगछके यति रत्नविजयजी अरु धनविजयजीने तीन थुइका पंथ निकाल रक्का है यह दोनो यतिने तीन थुई आदिक कितनीक वातों उत्सूत्र प्ररूपणा करकें मालवे और जालोरकें जिह्लेमें कितनेक न्नोले श्रावकोंकें मनमे स्वकपोलकल्पितमतरूप न्नूतका प्रवेश कराय दीया है. ये यती संवत् १९४० की सालमें गुजरात देशका सहेर अमदावादमें चोमासा करणेकों आये, जब मुनि श्रीआत्मारामजीका चोमासान्नी अहमदावादमें हूआथा.

तिस वखत रत्नविजयजीने एक पत्रमें कितनेक प्रश्न लिखके श्रीमन्नगरशेठजी प्रेमान्नाइ योग्य न्नेजे

वो पत्र नगर शेठजीने मुनि श्रीआत्मारामजीके पास भेजा उनोने वांचा परंतु वो पत्र अच्छीतरे शुद्ध लखा हूआ नहीथा, इसवास्ते महाराजने पीछा शेठजीकों दे दीया और शेठजीकों कहाके आप रत्नविजय जीकों कहना के तीन थुइके निर्णयवास्ते हमारे साथ सभा करो. तब श्रीमन्नगरशेठ प्रेमाभाइजीने रत्न विजयजीकों सभा करनेके वास्ते कहला भेजा, जब रत्नविजय, धनविजयजी यह दोनो नगरशेठके बंगेमें आकर शेठजीकों कह गये के हम सभा नही करेंगे.

कितनेक दिनो पीछे मेवाडदेशमें सादडी, राणक पुर और शिवगंजादि स्थानोसें पत्र आये तिसमें ऐसा लेख आया के अहमदावादमें सभा हुइ तिसमें रत्नविजयजी जीत्या और आत्मारामजी हाख्या, ऐसी अफवा सुनके नगरशेठजीने सर्व संघ एकठा करके ति नकी सम्मतसें एक पत्र छपवाय कर बहोत गामो के श्रावकोंको भेज दीया तिसकी नकल यहां लिखते है.

“ एतान् श्री अमदावादथी ली० शेठ प्रेमाभाइ हेमाभाइ तथा शेठ हठीसंघ केसरीसंघ तथा शेठ जय सिंघभाइ हठीसंघ तथा शेठ करमचंद प्रेमचंद तथा शेठ भगुभाइ प्रेमचंद वगेरे संघसमस्तना प्रणाम वांचवा.

विशेष लखवा कारण ए छे जे अत्रे चोमासुं मुनिश्री आत्मारामजी महाराज रहेला छे तथा मुनि राजेंद्रसूरि पण रहेला छे, ते तमो वगैरे घणा देशावर वाला जाणो छो. मुनि आत्मारामजी महाराज चार थोयो प्रतिक्रमणामां कहे छे, ते कांइ नवीन नथी परापूर्व चालती आवेली छे. हालमा मु० राजेंद्रसूरि, प्रतिक्रमणमां त्रण थोयो कहेवानुं परुप्युं छे; परंतु अहींआं अमदावादमां आठ दश हजार श्रावकनो संघ कहेवाय छे, तेमां कोइयें त्रण थोयो प्रतिक्रमणमां कहेवी एम अंगीकार कर्युं नथी, अने कोइ त्रण थोयो कहेतुं पण नथी, आटली वात लखवानुं हेतु ए छे जे गाम सादरी तथा शीवगंज तथा रतलाम विगरे देशावरथी श्रावकोना तथा साधुउना कागल आवे छे; तेमां एम लख्युं छे जे अमदावाद शहेरमां घणा श्रावकोए तथा साधुजीयोए त्रण थोयोनुं मत अंगीकार कर्युं छे ए विगेरे असंभवित जुठा लखाण आव्या करे छे, ए बधुं खोटुं छे, तेथी तमोने आ शहेरना संघनी तरफथी साचे साचुं लखवामां आवे छे के, अहीयां त्रण थोयोनुं मत कोइयें कबुल कर्युं नथी वली मुनि राजेंद्रसूरिनें पुछतां तेमनुं

कहेवुं एवुं छे के, अमे कोइ देशावरे लरव्युं नथी,तथा ल खाव्युं पण नथी, एरीतें तेमनुं कहेवुं छे. वीजुं सभा थइने तेमां मुनि श्री आत्मारामजी महाराज हाखा एवुं देशावरथी लखाण अहियां आवे छे; पण ना इजी ए वात वधी खोटी छे, केमके ? अत्रे सभा थइ नथी तो हारवा जीतवानी वात विलकुल खोटी छे, ते जाणजो. संवत १९४१ ना कार्त्तिक शुद ६ वार सनेव तारिख २५ मी माहे अक्टोंवर सने १८८४ ली० प्रेमाभाइ हेमाभाइना प्रणाम वांचजो.

इत्यादि वडे वडे तेवीश चौवीश शेठोंकी सही स हित पत्र छपवाके भेजे, चोमासा वीतत हूया पीछे मुनि श्री आत्मारामजी श्री सिद्धगिरिकी यात्रा क रके सूरत शहेरमें चतुर्मास रहे, तहांसें पीछे श्रीपा लीताणे चोमासा करा जव वहांसे विहार करके गाम श्रीमांमलमें फाल्गुन चतुर्मास करा, तहां मुनि आत्मारामजी महाराजके पास राधनपुरनगरका मुख्य जानकार श्रावक गोडीदास मोतीचंदजी आयके क हेने लगा के राधणपुर नगरमें रत्नविजयजी आये है, वो ऐसी प्ररूपणा करते है के प्रतिक्रमणके आ दिमें तीन थुइ कहनी परंतु चोथी थुइ नही कहनी.

इसी वास्ते में आपके पास विनंति करनेके वास्ते यहां आयाहूं के आप राजधनपुर नगरमें पधारो, क्योंके ? रत्नविजयजी आपसें तीन थुइ बाबत चरचा करणेकों कहते है, यह बात सुनकर मुनि श्री आत्मारामजी महाराजनें मांडल गामसें राधनपुर नगरकों विहार करा सो जब श्रीसंखेश्वर पार्श्वनाथजीके तीर्थमें आये, तहां राधनपुर नगरसें बहुत श्रावक जन आकर महाराज साहेबकों कहने लगे के रत्नविजयजी तो राधनपुर नगरसें थराद गामकी तरफ विहार कर गए हैं. यह बात सुनके श्रावक गोडीदास जीने राधनपुरके नगरशेठ सिरचंदजीके योग्य पत्र लिखके भेजा के तुमने रतनविजयजीकों मुनि आत्मारामजी महाराजके आवणे तक राखणा, क्योंके ? रत्नविजयजीके मास कल्पसें उपरांत रहनेका नियम नही है कितनेक गामोमें रत्नविजयजी मास कल्पसें अधिकभी रहे हैं यह बात प्रसिद्ध है ऐसा पत्र वांचके शेठ सिरचंदजीने राजधनपुर नगरसें दश कोश दूर तेरवाडा गाममें जहां रत्नविजयजी विहार करके रहेथें, वहां कासीदके मारफत एक पत्र लिखके भेजा; तहांसे रत्नविजयजीने उसपत्रका

उत्तर प्रत्युत्तर असमंजस रीतीसें राधनपुरनगरमें नही आवनेकी सूचना करनेवाला लिखके भेज दीया.

इस लिखनेका प्रयोजन यह है के जब रत्नविजयजीने श्रीअहमदावादमें सभा नही करी तब विद्याशालाके बैठने वाले मगनलालजी तथा छोटालालजी आदिक अन्यभी कितनेक श्रावकोने प्रार्थना करीथी अरु अब श्रीराधनपुर नगरके शेठ शिरचंदजी अरु गोडीदासादि सर्व संघ मिलके मुनि श्री आत्मारामजी महाराजकों प्रार्थना करी के, रत्नविजयजी तीन थुइ प्ररूपते हैं, अरु प्रतिक्रमणकी आदिकी चैत्यवंदनमें चार थुइ कहनेकी रीत प्राचीन कालसें सर्व श्रीसंघमें चली आती है. तो आप सर्व देशोंके चतुर्विध श्रीसंघके पर कृपा करके पडिक्कमणेकी आदिमें चार थुइयों चैत्यवंदनमें जो कहते हैं सो पूर्वाचार्योंके बनाये हूए कौन कौनसें शास्त्रके अनुसारसें कहते हैं, ऐसे बहोत शास्त्रोंकी साक्षि पूर्वक चार थुइयोंका निर्णय करने वाला एक ग्रंथ बनवायदो, जिसके वाचने पढनसें सज्ञानोके अंत:करणमें अर्हद्वचन उच्छापन करणे वालेने भ्रम डाल दीया है सो मिट जावेगा. इत्यादि बहोत उपकार होवेगा ऐसी श्रीसं

घकी आग्रह पूर्वक विनंति सुनकर और लाजका कारण जानकर महाराज श्रीआत्मारामजीने यह विषयपर ग्रंथ बनानेकी मंजुरीयात दीनी. फेर महाराज साहेब यह रत्नविजयजीको प्रथमकी मंत्रसाधनेकी हकीकतसें तथा पीछेसें श्रीविजयधरणींद्रसूरिसें खटपट चली इत्यादि, औरभी तिसके पीछे स्वयमेव श्रीपूज बन बैठे, तथा उदेपुरके राणेकी फरमाससें पालखी चम्मरादि छीन लीनी, तदपीछे स्वयमेव साधुजी बन बैठे इत्यादि कितनीक हकीकत प्रथमसे सुनीथी और कितनीक अबभी श्रावकोंके मुखसें सुनके करुणाके समुद्र, परोपकार बुद्धिकेही परमाणुसें जिनोके शरीरकी रचना हूइ है ऐसे महाराज साहेबने प्रथमतो रत्नविजयजी बहुल संसारी न हो जावे इसी वास्ते इनोका उद्धार करना चाहीयें. ऐसा उपकार बुद्धिसें हम सब श्रावकोंकों कहने लगे के प्रथमतो यह रत्नविजयजीकों जैनमतके शास्त्रानुसार साधु मानना यह बात सिद्ध नही होती है. क्योंके? रतनविजयजी प्रथम परिग्रहधारी महाव्रतरहित यति थे, यह कथा तो सर्व संघमे प्रसिद्ध है, अरु पीछे निर्ग्रंथ पणा अंगीकार करके पंचमहाव्रत रूप संयम

ग्रहण करा; परंतु किसी संयमी गुरुके पास चारित्रो पसंपत् अर्थात् फेरके दीक्षा लीनी नही, अरु पहेले तो इनका गुरु प्रमोदविजयजी यती थे, सोतो कुछ संयमी नही थे यह बात मारवाडके बहोत श्रावक अछीतरेसें जानते है. तो फेर असंयतीके पास दीक्षा लेके क्रिया उद्धार करणा. यह जैनमतके शास्त्रोंसें विरुद्ध है.

इसी वास्ते तो श्रीवज्रस्वामी शाखायां चांद्रकुले कौटिकगणे बृहद्गछे तपगछालंकार भट्टारक श्रीजग चंद्रसूरिजी महाराजे अपणेकों शिथिलाचारी जानके चैत्रवाल गछीय श्री देवभद्रगणि संयमीके समीप चा रित्रोपसंपद् अर्थात् फेरके दीक्षा लीनी. इस हेतुसेंतो श्रीजगचंद्रसूरिजी महाराजके परम संवेगी श्रीदेवेंद्रसू रिजी शिष्यें श्रीधर्मरत्नग्रंथकी टीकाकी प्रशस्तिमें अ पने बृहद् गछका नाम छोडके अपने गुरु श्रीजगचंद्र सूरिजीकों चैत्रवाल गछीय लिखा. सो यह पाठ है.
क्रमशश्चैत्रावालक, गछे कविराजराजिनभसीव ॥ श्रीभुवनचंद्रसूरिर्गुरुरुदियाय प्रवरतेजाः ॥ ४ ॥ तस्य विनेयः प्रशमे, कमंदिरं देवभद्रगणिपूज्य ॥ शुचिस मयकनकनिकषो, बभूव भुविदितभूरिगुण ॥ ५ ॥

तत्पादपद्मभृंगा, निस्संगाश्चंगतुंगसंवेगाः ॥ संजनित शुद्धबोधाः, जगति जगच्चंद्रसूरिवराः ॥ ६ ॥ तेषा मुभौ विनेयौ, श्रीमान् देवेंद्रसूरिरित्याद्यः ॥ श्रीविज यचंद्रसूरिर्द्वितीयकोऽद्वैतकीर्त्तिभरः ॥ ७ ॥ स्वान्ययो रुपकाराय, श्रीमद्देवेंद्रसूरिणा ॥ धर्मरत्नस्य टीकेयं, सुखबोधा विनिर्ममे ॥ ८ ॥ इत्यादि. इस वास्ते नव भीरु पुरुषांकों अभिमान नही होता है, तिनकूं तो श्रीवीतरागकी आज्ञा आराधनेकी अभिलाषा होती है, तब रत्नविजयजी अरु धनविजयजी यह दोनुं जेकर भवभीरु है, तो इनकोंभी किसी संयमी मुनिके पास फेरके चारित्रोपसंपत् अर्थात् दीक्षा लेनी चाहि यें, क्योंके फेरके दीक्षा लेनेसें एकतो अभिमान दूर होजावेगा, और दूसरा आप साधु नही है तोभी लो कोंकों हम साधु है ऐसा केहना पडता है यह मिथ्या भाषण रूप दूषणसेंभी वच जायगे, अरु तीसरा जो कोइ भोले श्रावक इनकों साधु करके मानता है, उन श्रावकोंके मिथ्यात्वभी दूर हो जावेगा. इत्यादि बहुत गुण उत्पन्न होवेंगे जेकर रत्नविजयजी धनवि जयजी आत्मार्थी है तो यह हमारा कहना परमो पकाररूप जानके अवश्यही स्वीकार करेंगे.

यह फेरके दीक्षा उपसंपत् करनेका जिस माफक जैनशास्त्रोमें जगे जगे लिखे है, तिसि माफक हम इनोके हितके वास्ते कुछ आप श्रावकोंकों कहते है. तथाच जीवानुशासनवृत्तौ श्रीदेवसूरिभिः प्रोक्तं ॥ यदि पुनर्गच्छो गुरुश्च सर्वथा निजगुणविकलो भवति तत आगमोक्तविधिना त्यजनीयः परं कालापेक्षया योऽन्यो विशिष्टतरस्तस्योपसंपद्ग्राह्या न पुनः स्वतंत्रैः स्थातव्यमिति हृदयं । इति जीवानुशासनवृत्तौ । इसकी भाषा लिखते है जेकर गछ और गुरु यह दोनो सर्वथा निजगुण करके विकल होवे तो, आगमोक्त विधि करके त्यागने योग्य है, परं कालकी अपेक्षायें अन्य कोइ विशिष्टतर गुणवान संयमी होवे, तिस समीपें चारित्र उपसंपत् अर्थात् पुनर्दीक्षा ग्रहण करनी परंतु उपसंपदाके लीया विना स्वतत्र अर्थात् गुरुके विना रहणा नही इस कहनेका तात्पर्यार्थ यह है के जो कोइ शिथिलाचारी असंयमी क्रिया उद्धार करे सो अवश्यमेव संयमी गुरुके पास फेरके दीक्षा लेवे. इस हेतुसें रत्नविजयजी अरु धनविजयजीकों उचित है के प्रथम किसी संयमी गुरुके पास दीक्षा लेकर पीछे क्रिया उद्धार करे तो आगमकी आज्ञाभंग रूप

दूषणसें बच जावे और इनकों साधु माननेवाले श्रावकोंका मिथ्यात्वभी दूर हो जावे, क्योंके असाधुकों साधु मानना यह मिथ्यात्व है और विना चारित्र उपसंपदा अर्थात् दीक्षाके लीये कदापि जैनमतके शास्त्रमें साधुपणा नही माना है.

तथा महानिशीथके तीसरे अध्ययनमें ऐसा पाठ है ॥ सत्तठ गुरुपरंपरा कुसीले, एग डु ति परंपरा कुसीले ॥ इस पाठका हमारे पूर्वाचार्योंने ऐसा अर्थ करा है,इहां दो विकल्प कथन करनेसें ऐसा मालुम होता है के एक दो तीन गुरु परंपरा तक कुशील शिथिलाचारीके हूएभी साधु समाचारी सर्वथा उछिन्न नही होती है,तिस वास्ते जेकर कोइ क्रिया उद्धार करे तदा अन्य संभोगी साधुके पाससें चारित्र उपसंपदा विना दीक्षाके लीयांभी क्रिया उद्धार हो शक्ता है, और चोथी पेढीसें लेकर उपरांत जो शिथिलाचारी क्रिया उद्धार करे तो अवश्यमेव चारित्र उपसंपदा अर्थात् दीक्षा लेकेही क्रिया उद्धार करे अन्यथा नही.

अथ जेकर प्रमोदविजयजीके गुरुभी संयमी होते तब तो रत्नविजयजी विना दीक्षाके लीयांभी क्रिया उद्धार करते तोभी यथार्थ होता, परंतु रत्न

विजयजीकी गुरुपरंपरा तो बहु पेढीयोंसें संयम रहित थी इस वास्ते जेकर रत्नविजयजी आत्महितार्थी होवे तो, इनकों पक्षपात छोडके अवश्यमेव किसी संयमी गुरु समीपे दीक्षा लेके क्रिया उद्धार करणा चाहिये, क्योंके धनविजयजीनें अपनी बनाइ पूजा में जो गुर्वावली लिखी है सो ऐसी है १ देवसूरि, २ प्रभसूरि, ३ रत्नसूरि, ४ क्षमासूरि, ५ देवेंद्रसूरि, ६ कल्याणसूरि, ७ प्रमोद, अरु ८ विजयराजेंद्रसूरि इनकी तीसरी चोथी पेढीवाले तो संयमी नही थे इस वास्ते रत्नविजयजीकों नवीन गुरुके पाससे संयम लेके क्रिया उद्धार करना चाहियें जेकर पूर्वोक्त रीतीसें क्रिया उद्धार न करेगें तो जैनमतके शास्त्रोंकी श्रद्धावाले इनकों जैनमतके साधु क्योंकर मानेगे?

इत्यादि रत्नविजयजी अरु धनविजयजीकों मिथ्यात्वरूप कादवमेंसें निकालके सम्यक्त्वरूप शुद्ध मार्ग पर चढानेमें हितकारक, ऐसा करुणाजनक उपदेश श्रीमन्महाराज श्रीआत्मारामजीके मुखसें सुनके हम सव श्रावकमंडल वहोत आनंदित भये, उसी वखत हम निश्चय कर रक्खा के जब महाराज साहेब चार स्तुतिके निर्णयका ग्रंथ बनाकर हमकों देवेंगे,

तब हम सब देसोंके श्रावकोंकों अरु विहार करणे वाले साधुयोंकों जानने वास्ते ये ग्रंथकों छपवाय कर प्रसिद्ध करेगें तब पूर्वोक्त रत्नविजयजीके हिताथीक सूचनाभी येही ग्रंथके प्रस्तावनामें लिख देवेगें, जिस्सें रत्नविजयजीभी यह बातकूं जानकर अपक्षपाति होके आपही अपनी भूलका पश्चात्ताप करके शुद्ध गुरुके पास चारित्र उपसंपत् लेके अपना जो अवश्यकार्य करनेका है. सो कर लेवेंगे, तिस्सें इनके पर महाराज साहेबकाभी बडा उपकार होवेगा, क्योंके पूर्वाचार्योंकी चली हूइ समाचारीका निषेध करके नवीन पंथ निकालनेसें कितनेक अल्प समज वाले जीवोंका चित्त व्युद्ग्राहित हो जोता है अरु नवीन नवीन प्रवर्त्ति देखनेसें कितनेक जीवोंकी श्रद्धाभी भ्रष्ट हो जाती है तिस्सें वो जीव धर्मकरणी करणेका उद्यमही छोड देता है, इसीतरें श्री वीतरागके मार्गमें बडा उपद्रव करनेका उद्यम छोड देवेगें जिस्सें इनोकों बहोत लाभ होवेगा. अरु जैनमार्गका शुद्ध निर्दोष प्रवृत्ति चलनेसें शासनकाभी अच्छा प्रभाव दिखेंगा, ऐसा हमारा अभिप्राय था सो प्रस्तावनामें लिखके पूरण करा.

अब सकल देश निवासी श्रावकादि चतुर्विध श्रीसंघकों हमारी यह प्रार्थना है के पडिक्कमणेमें चार थोयों कहेनेकी रूढी यद्यपि परंपरासें चली आती है, सो कोइ मतलबी पुरुष अपना किसी प्रकारका मतलब साधनेके लीये चार थोयोंके बदलेमें तीन अथवा दो किंवा एकज थोय कहेनेकी प्ररूपणा जो करते हैं उनका कहेना जो विवेकी जाणकार पुरुष है उनके हृदयमें तो प्रवेश नही कर शक्ता, परंतु कितनेक अज्ञ अरु अल्पसमजवाले नोले लोक हैं उनके हृदयमें कदापि प्रवेशजी कर शक्ता है, तो उन नोले लोकोंकों ये ग्रंथका उपदेश हो जावेगा. जिस्से उनको पूर्वोक्त मतवादीयोंका उपदेश पराजव न कर शकेंगा. ऐसा उपकार बुद्धिसें यह महाराज श्रीमद् आत्मारामजी आनंदविजयजीने जो इस विषय पर ग्रंथ बनाया, सो हम उपवाय कर प्रसिद्ध कीया हे. इस्में श्रीजिनशासनकी यथार्थ प्रवृत्ति जो परंपरासें चलीआती हे सो अंखमित रहो अरु बहुल संसारी होनेकी बीक न रखने वाले मतिनेदक जनोकी जो जैन मतमें विपरीत प्रवृत्ति है सो खंमित हो जाउ. यह हमारा आशीर्वाद हे. किंबहुना.

इसग्रंथमें जे जे शास्त्रोंकी साख दिनी है तिसका नाम.



यहां कहीं कहीं एक ग्रंथका जो दोवार तीन वार नाम लिखा है, सो न्यारे न्यारे प्रयोजन वास्ते है. कहीं चौथी थुइ वास्ते, कहीं श्रुतदेवता क्षेत्रदेवता वास्ते, कहीं सप्तवार चैत्यवंदनाकी गिनती वास्ते, इत्यादि अन्य अन्य प्रयोजनके वास्ते कहीं कहीं किसी किसी ग्रंथके दो तीन वार नाम लिखे है. इस वास्ते पुनरुक्त है ऐसा समजना नही ॥

१ धर्मरत्न देवेंद्रसूरिकृत.
२ जीवानुशासन श्रीदेवसूरिकृत.
३ श्रीमहानिशीथ गणधरकृत.
४ पंचाशक हरिभद्रसूरिकृत.
५ महाभाष्य शांत्याचार्यकृत.
६ विचारामृतसंग्रह श्रीकुलमंडनसूरिकृत.
७ प्रवचनसारोद्धारसूत्रवृत्ति श्रीनेमिचंद्रसूरिकृत मूल और श्रीसिद्धसेनसूरिकृतवृत्ति.
८ पुनः पंचाशकवृत्ति श्रीअभयदेवसूरिकृत.

९ उपदेशपदवृत्ति श्रीमुनिचंद्रसूरिकृत.
१० ललितविस्तरापंजिका श्रीमुनि०
११ पुनः महाभाष्य शांत्याचार्यकृत.
१२ कल्पभाष्य संघदासगणिकृत.
१३ पुनः महाभाष्य शांतिसूरिकृत.
१४ पुनः महाभाष्य शांतिसूरिकृत.
१५ व्यवहारभाष्य संघदासगणिकृत.
१६ संघाचारभाष्यवृत्ति धर्मघोषसूरिकृत.
१७ कल्पसामान्यचूर्णि पूर्वधरकृत.
१८ कल्पविशेषचूर्णि पूर्वधराचार्यकृत.
१९ कल्पवृहद्भाष्य पूर्वधराचार्यकृत.
२० आवश्यकवृत्ति हरिभद्रसूरिकृत.
२१ वंदनकप्रश्ना०
२२ प्रवचनसारोद्धारसूत्रवृत्ति०
२३ यतिदिनचर्या श्रीदेवसूरिकृत.
२४ ललितविस्तरा श्रीहरिभद्रसूरिकृत.
२५ पुनः प्रवचनसारोद्धारसूत्रम्.
२६ पुनः प्रवचनसारोद्धारवृत्ति०
२७ पुनर्महाभाष्यं शांतिसूरिकृत.
२८ पुनः यतिदिनचर्या श्रीदेवसूरिकृत.

२९ पुनः यतिदिनचर्या०
३० पुनः यतिदिनचर्या०
३१ समाचारी प्राचीनाचार्यकृत.
३२ यतिदिनचर्या नावदेवसूरिकृत.
३३ पुनः यतिदिनचर्या नावदेवसूरिकृत.
३४ पुनः यतिदिनचर्या नावदेवसूरिकृत.
३५ पंचवस्तु श्रीहरिन्नद्रसूरिकृत.
३६ वृंदारुवृत्तिः
३७ योग्यशास्त्र हेमचंद्रसूरिकृत.
३८ श्राद्धविधि रत्नशेखरसूरिकृत.
३९ प्रतिक्रमणगर्ज्नहेतुश्रीजयचंद्रसूरि विरचित.
४० संघाचारवृत्ति धर्मघोषसूरिकृत.
४१ पाक्षिकसूत्रगणधरादिरचित.
४२ पाक्षिकसूत्रचूर्णि पूर्वधरकृत.
४३ वसुदेवहिंमि पूर्वधरकृत.
४४ आवश्यकार्थदीपिका श्रीरत्नशेखरसूरिकृत.
४५ आवश्यकचूर्णि पूर्वधरकृत.
४६ आवश्यककायोत्सर्गनिर्युक्ति श्रीन्नद्रबाहु०
४७ वृहद्भाष्य शांतिसूरिकृत.
४८ विधिप्रपा जिनप्रन्नसूरिकृत.

४ए धर्मसंग्रह मानविजयजी उपाध्यायकृत.
५० लघुन्नाष्य श्रीदेवेंद्रसूरिकृत.
५१ वंदनकचूर्णि पूर्वधरकृत.
५२ धर्मसंग्रहके अंतरगत गाथा पूर्वाचार्यकृत०
५३ वृहत्खरतरसमाचारी जिनपत्यादिसूरिकृत.
५४ प्रतिक्रमणसूत्रकी लघुवृत्ति तिलकाचार्यकृत.
५५ समाचारी अन्नयदेवसूरिकृत.
५६ सोमसुंदरसूरि कृत समाचारी.
५७ समाचारी देवसुंदरसूरिकृत.
५ᒣ समाचारी नरेश्वरसूरिकृत.
५ए तिलकाचार्यकृत विधिप्रपा.
६० समाचारी तिलकाचार्यकृता.
६१ प्रतिक्रमणहेतुगर्न्नितस्वाध्याय श्रीमउपाध्याय यशोविजयगणिकृत.
६२ षडावश्यकविधि पूर्वाचार्यकृत
६३ पंचाशकसूत्र श्रीहरिन्नद्रसूरिकृत मूलसूत्र, अरु वृत्ति श्रीअन्नयदेवसूरिकृत.
६४ जीवानुशासनवृत्ति श्रीदेवसूरिकृत.
६५ आवश्यकनिर्युक्ति श्रीन्नद्रबाहुस्वामि चौदहपूर्वधरकृत.

॥ श्रीजैनधर्मो जयतितराम् ॥

अथ

न्यायांभोनिधि-मुनिश्रीमद् " आत्मारामजी आनंद विजयजी " विरचित-

चतुर्थ स्तुति निर्णयाख्य ग्रंथ प्रारंभः ॥



तत्रादौ मंगलप्रक्रमः ।

(अनुष्टुप्वृत्तम्)

नमः श्रीज्ञातपुत्राय, महावीराय श्रेयसे ॥
रत्नत्रयनिधानाय, जिनेंद्राय जगद्धिते ॥१॥

(इंद्रवज्रावृत्तम्)

अन्यानपि स्तौमि जिनेंद्रचंद्रान् ,
ध्यायामि साक्षाच्छ्रुतदेवतां च ॥
रत्नत्रयश्रीसमलंकृतांगान् , प्रार
ब्धसिद्ध्यै सुगुरून् श्रयामि ॥ २ ॥

शिष्टाः खलु कचिदभीष्टवस्तुनि प्रवर्तमाना इष्टदेव तानमस्कारपूर्वकमेव प्रायः प्रवर्तंते । इष्टदेवतानम

स्कारपूर्वकं प्रवर्तमानानां च देवताविषयज्ञुत्नावस मूहविघ्नव्यपोहत्वेन प्रारब्धशास्त्रे प्रवृत्तिरपि अप्रतिह तप्रसरा स्यात् । अतः प्रथमं मंगलोपन्यासः ।

अभिधेयं चात्र मुख्यवृत्त्या चतुर्थस्तुतिनिर्ण य एव, निरभिधेये (मंडूकजटाकेशगणनसं ख्यायामिव) न प्रेक्षावतां प्रवृत्तिः । संबंधश्चा त्र वाच्यवाचकभावो नाम व्यक्त एव, प्र योजनं तु चतुर्थस्तुतिसंशयगर्तपतितानां जनानामुद्धरणम्—इति ।

॥ यह वर्त्तमान कालमें रत्नविजयजी अरु धनवि जयजीनें प्रतिक्रमणेकी आदिकी चैत्यवंदनमें तीन थुइ कहेनेका पंथ चलाया है, सो जैनमतके शास्त्रा नुसार नही है, तिसका निर्णय लिखते हैं.

प्रथम जो रत्नविजयजी तीन थुइकी थापना क रते हैं सो हमने श्रावकोंके मुखसे इसी माफक सु नी हैं. एक बृहत्कल्पकी गाथा, दूसरी व्यवहार सू त्रकी गाथा, तीसरी आवश्यक सूत्रका पारिष्ठावणि या समितिका पाठ, चोथी पंचाशकवृत्ति यह चार ग्रंथोंके पाठानुसार करते हैं. तिनमेंभी पंचाशकवृ त्तिका पाठ अपनी श्रद्धाकों बहुत पुष्टिकारक मानतें

हैं, इसवास्ते हमजी इहां प्रथम पंचाशकवृत्तिकाही पाठ लिखके चार थुइका निर्णय करते हैं ॥

सो पाठ इस प्रमाणे है ॥ उक्तंच पंचाशकेः—णव कारेण जहन्ना, दंमग थुइ जुअल मज्किमा णेआ ॥ संपुम्मा उक्कोसा, विहिणा खलु वंदणा तिविहा ॥ १ ॥ व्याख्या ॥ नमस्कारेण ' सिद्ध मरुय मणिंदिय, मक्किय मणवद्य मच्चुयं वीरं ॥ पणमामि सयलतिहुयण,मउयचूडामणिं सिरसा 'इत्यादिपाठपूर्वकनमस्क्रियालक्षणेन करणनूतेन क्रियमाणा जघन्या स्वल्पा पाठक्रिययोरल्पत्वाद्वंदना नवतीति गम्यं । उत्कृष्टादि त्रिनेदमित्युक्त्वापि जघन्यायाः प्रथमननिधानं तदादिशब्दस्य प्रकारार्थत्वान्न डुष्टं, तथा दंमकश्चारिहंतचेश्याणमित्यादिस्तुतिश्च प्रतीता तयोर्युगलं युग्ममेते एव वा युगलं दंमकस्तुतियुगलमिह च प्राकृतत्वेन प्रथमैकवचनस्य तृतीयैकवचनस्य वा लोपो इष्टव्यः, मध्यमाजघन्योत्कृष्टा पाठक्रिययोस्तथाविधत्वादेतच्च व्याख्यानमिमां कल्पनाप्यगाथामुपजीव्य कुर्वंति । तद्यथा ॥ निस्सकडमनिस्सकडे, वावि चेइ ए सवहिं थुइ तिम्नि ॥ वेलं व चेश्याणि, विणाउं एक्कक्किया वावि ॥ यतो दंमकावसाने एका स्तुतिर्दीयत इति दंम

कस्तुतिरूपं युगलं नवति। अन्येत्वाहुः, दंमकैः शक्रस्तवादिन्निः स्तुतियुगलेन च समयन्नाषया स्तुतिचतुष्टयेन च रूढेन मध्यमा ज्ञेया वोद्धव्या, तथा संपूर्ण परिपूर्णा सा च प्रसिद्धदंमकैः पंचन्निः स्तुतित्रयेण प्रणिधानपाठेन च नवति चतुर्थस्तुतिः किलार्वाचीनेति किमित्याह उत्कृष्यत इत्युत्कर्षाङुत्कृष्टा इदं च व्याख्यानमेके 'तिस्नि वा कट्टई जाव, थुइर्ज तिसिलोगिया ॥ ताव तत्र अणुस्मायं, कारणेण परेण वी' त्येतां कल्पन्नाष्यगाथां 'पणिहाणं मुत्तसुत्तीए' इति वचनमाश्रित्य कुर्वंति अपरेत्वाहुः पंचशक्रस्तवपाठोपेता संपूर्णेति विधिना पंचविधान्निगमप्रदक्षिणात्रयपूजादिलक्षणेन विधानेन ॥ खलुर्वाक्यालंकारे अवधारणे वा तत्प्रयोगं च दर्शयिष्यामः वंदना चैत्यवंदना त्रिविधा त्रिन्निः प्रकारैः त्रिप्रकारैरेव नवतीति ॥

अस्य नाषा ॥ नमस्कार करके " सिद्ध मरुयमणिंदिय, मक्किय मणवक्रमच्चुयं वीरं ॥ पणमामि सयल तिहुयण, मजय चूडामणिं सिरसे" त्यादि पाठ पूर्वक नमस्कार लक्षण करणन्नूत करके क्रियमाण नमस्कार जघन्य वंदना होती है. पाठ क्रियाके अल्प होनेसें उत्कृष्टादि तीन नेद ऐसें कहकरकेन्नी प्रथम

जघन्यका कथन करा तिस आदि शब्दकों प्रकारार्थ होनेसें इष्ट नही है. यह जघन्य चैत्यवंदना ॥ १ ॥

तथा दंमक अरिहंतचेश्याणं श्त्यादि. स्तुति जो है सो प्रसिद्ध है तिन दोनोका युगल जोडा अथवा दंमकस्तुतिही युगल दंमकस्तुतियुगल इहां प्राकृत नापा होने करके प्रथम विनक्तिका एक वचन वा तृतीय विनक्तिके एक वचनका लोप जानना. यह मध्यमपाठक्रियाके होनेसें मध्यमा चैत्यवंदना.

यह व्याख्यान इस कल्पनाप्यकी गाथाकों लेके करते हैं. तद्यथा निस्सकडमनिस्सकडे,वाविचेईएसवहिं थुई तिन्नि ॥ वेलंव चेश्याणि, विणाउं एक्क क्किया वा वि ॥ १ ॥ जिस हेतुसें दंमकके अवसानमे एक स्तुति देते हैं, ऐसे दंमक स्तुतिरूप युगल होता है, अन्य ऐसें कहते है शक्रस्तवादि पांच दंमक करके, और स्तुति युगल करके, सिद्धांत नापा करके, स्तुति चार रूढ करके अर्थात् दंमक पांच और स्तुति चार करके जो चैत्यवंदना करे सो मध्यम चैत्यवंदना जाननी ॥ २ ॥

तथा संपूर्ण परिपूर्णा सो प्रसिद्ध दंमक पांच करके,और स्तुति तीन करके,और प्रणिधान पाठ करके, होती है चोथी थुइ अर्वाचीन है,इसी वास्ते ग्र

हण करी नही तब क्या हूआ, यह उत्कृष्टी चैत्यवंदना हुइ ॥ ३ ॥

यह व्याख्यान कोइएक तो 'तिस्निवा कट्टई जाव, थुइ्उ तिसिलोगिया ॥ ताव तब अणुस्नायं, कारणेण परेणावि ॥ १ ॥ इस कल्पभाष्य गाथाकों " पणिहाणं मुत्त सुत्तिए" इस वचनकों आश्रित्य होकर करते है ॥

अन्य ऐसे कहते हैं के पंचशक्रस्तवपाठसहित संपूर्ण चैत्यवंदना होती है. विधि करके पंचविध अभिगम, तीन प्रदक्षिणा, पूजादि लक्षण विधान करके, खलु शब्द वाक्यालंकारमें है, वा अवधारणमें है, तिसका प्रयोग आगें दिखलाउंगा ऐसें चैत्यवंदना तीन प्रकारें है.

उपर लिखेका सारार्थ यह हैके कल्पभाष्य गाथाके अनुसारसें कोइ एक तो मध्यम चैत्यवंदनाका स्वरूप पंचदंमक और चार थुईके पढनेसें मानता है ॥ १ ॥ और कोइक तो पंच दंमक अरु तीन थुई अरु प्रणिधान पाठ सहित पढेसें उत्कृष्ट चैत्यवंदन मानता है, और चोथी थुईकों अर्वाचीन मानके तिसका ग्रहण नही करता है ॥ २ ॥ और कोइक तो पांच शक्रस्तव, आठथुईकी चैत्यवदंना अरु पंच अभिगम, तीन

प्रदक्षिणा, पूजादि संयुक्त इसकों उत्कृष्ट चैत्यवंदना मानता है ॥ ३ ॥

यह तीन मत अजयदेव सूरिजीने दिखलाएहैं परंतु इन तीनो मतोमेंसें अजयदेवसूरिजीने सम्मत वा असम्मत कोइनी मतकों नही कहाहैं. तो फेर रत्नविजयजी अरु धनविजयजीकों कहेतेहैंके अजयदेव सूरिजीने पंचाशकमें चोथी थुई अर्वाचीन कही है. नला, कदापि ऐसा कहना साक्षर सुबोध पुरुषोंका हो शक्ता है. क्योंके अजयदेव सूरिजीनें तो किसीके मतकी अपेक्षासें चोथी थुई अर्वाचीन कही है, परंतु स्वमतसम्मत न कही है.

अब बुद्धिमानोकों विचारना चाहियेंके कल्पनाष्य गाथाके अनुसारे मध्यम चैत्यवंदनामें चारथुई कही, अने पंचशक्रस्तव रूप उत्कृष्ट चैत्यवंदनामें आठ थुई कहनी कही. इन दोनों पंचाशकके लेखोंकों छोडके एक मध्यके तीसरे पक्षकोंही मानना यह क्या सम्यग् दृष्टियोंका लक्षण है?

कदापि रत्नविजयजी अरु धनविजयजी ऐसें मान लेवेके शास्त्रमे तीन थुईनी किसीके मतसें कही है. और चार थुईनी कही है ये दोनो मत कहे हैं; इन

मेंसें हम एककान्नी निषेध नही करते है, परंतु हमारे तपगछके पूर्वाचार्य तथा अन्य गछोके आचार्य सब चार थुई मानते आएहै इस वास्ते हमन्नी चार थुइ मानते है तो इनकी क्या हानी है ?

हमारा अनुन्नव मुजब अन्य तो कोइन्नी हानी दिखनेमें नही आती है; परंतु जिन श्रावकोंके आगें प्रथम अपने मुखसें तीन थुइकी श्रद्धा प्ररूप चूके है फेर तिनके आगें चार थुइकी प्ररूपणा करनेसें लज्जा आती है. उनकुं हम कहते है के हे न्नव्य लज्जा रखनेसे उत्सूत्र प्ररूपणा करनी पडती है. इस्सें संसारका तरणा कदापि नही होवेगा, परंतु पंचाशककी कथन करी जो चार वा आठ थुइ तिन का निषेध करनेसें उलटी संसारकी वृद्धि होनेका संन्नव होता है, तो इस्स हमारे लेखकों वांचकर जो न्नव्यजीव मतपक्षपातसें रहित होवेगा सो कदापि चार थुइका निषेध अरु तीन थुइके माननेका आग्रह न करेगा ॥ इति पंचाशक पाठनिर्णय ॥ १ ॥

प्रश्नः—पंचाशकजीमें चोथी थुइकूं किसीके मत प्रमाणसें श्रीअन्नयदेव सूरिजीयें अर्वाचीन कही है? अरु वो अर्वाचीन पदका क्या अर्थ है ?

उत्तरः—हे नव्य जो वस्तु आचरणासें करी जावे तिसकों अर्वाचीन कहते हैं.

प्रश्नः—आचरणा किसकूं कहते हैं ?

उत्तरः—उत्तराध्ययनकी बृहद्वृत्तिका करणहार महाप्रनाविक स्थिरापद्रियगछैकमंमन आचार्य श्री वादिवेताल शांतिसूरिजीने संघाचार नामक चैत्यवंदन महानाष्य करा है, तिसमें आचरणाका स्वरूप ऐसा लिखा है ॥ नाष्यपाठः ॥ तीसेकरणविहाणं, नवइ सुत्ताणुसारउ किंपि ॥ संविग्गायरणाउ, किंचीउ नयंपि तं नणिमो ॥ १५ ॥ पुब्वइ सीसो नयवं, सुत्तो इयमेव साहिउ जुत्तं ॥ किं वंदणाहिगारे, आयरणा कीरइ सहाया ॥ १६ ॥ दीसइ सामन्नेणं, वुत्तं सुत्तंमि वंदणविहाणं ॥ नवइ आयरणाउ, विसेसकरणक्कमो तस्स ॥ १७ ॥ सुयणमेत्तं सुत्तं, आयरणाउय गम्मइ तयहो ॥ सीसायरियकमेणहि, नवंते सिप्पसब्बाइं ॥ १८ ॥ अन्नंच ॥ अंगो वग पइन्नय, नेया सुअसागरो खलु अपारो ॥ को तस्स मुणइ मफ्रं, पुरिसो पंमिच्चमाणी वि ॥ १ए ॥ किंतु सुहज्जाण जण गं, जं कम्मखयावहं अणुघाणं ॥ अंगसमुदे इंदे, नणिय चियतं जउ नणियं ॥ २० ॥ सब्ब प्पवा

यमूलं, डुवालसंग जन समस्कायं ॥ रयणायरतुल्लं ख लु, ता सव्वं सुंदरं तंमि ॥ २१ ॥ वोछिन्ने मूलसुए, विंदुपमाणंमि संपइ धरंते ॥ आयरणाउ नज्जइ, परम ठो सव्वकज्जेसु ॥ २२ ॥ नणियंच ॥ वहुसुय कमाणुप त्ता, आयरणा धरइ सुत्त विरहेवि ॥ विन्नाए विपई वे, नज्जइ दिठं सुदिठीहिं ॥ २३ ॥ जीवियपुव्वं जीव इ, जीविस्सइ जेण धम्मिय जणंमि ॥ जीयंति ते ण नन्नइ, आयरणा समय कुसलेहिं ॥ २४ ॥ तह्मा अनाय मूला, हिंसारहिया सुजाण जणणीय ॥ सूरि परं परपत्ता, सुत्तव्वपमाण मायरणा ॥ २५ ॥

व्याख्याः—तिस चैत्यवंदना करनेके नि्नप्रकारका विधिनेद कितनेक तो सूत्रानुसार जाने जाते है, और कितनेक संविग्न गीतार्थोंकी आचरणासें जाने जाते है, अरु कितनेक पूर्वोक्त दोनोसें जाने जाते है, यह तीन प्रकारसें मैं चैत्यवंदनाका स्वरूप कहताहूं ॥ १५ ॥

शिष्य पूछता है के, हे नगवन् सूत्रकी वार्त्ताही कहनी युक्त है, क्यों तुम वंदनाके अधिकारमें आ चरणाकी सहायता लेतेहो ॥ १६ ॥

गुरू कहते हैं हे शिष्य सूत्रमें चैत्यवंदनाका वि

धिके भेद सामान्यमात्र संक्षेपमात्र करके कहे हैं. तिस चैत्यवंदनाके करनेका जो क्रम है सो विशेष करके आचरणासें जाना जाता है ॥ १७ ॥ क्योंके सूत्र जो है सो सूचना मात्र है. च पुनः आचरणा सें तिस सूत्रका अर्थ जाना जाता है, जैसें शिल्प शास्त्रनी शिष्य अरु आचार्य के क्रम करके जाना जाता है; परंतु स्वयमेव नही जाना जाता है ॥ १८ ॥

तथा अन्य एक बात है ॥ अंगोपांग प्रकीर्णक भेद करके श्रुत सागर जो है सो निश्चय करके अपार है कौन तीस श्रुतसागरके मध्यकूं अर्थात् श्रुत सागरके तात्पर्यकूं जान सकता है. अपणे ताइं चाहो कितनाही पंमितपणा क्यो न मानता होवे? ॥ १९ ॥ किंतु जो अनुष्ठान शुन्न ध्यानका जनक होवे ओर कर्मोंके क्षय करने वाला होवे, सो अनुष्ठान आवश्यमेव शास्त्रअंग शास्त्ररूप समुद्रके विस्तारमें कह्या हूआही जानना. जिस वास्ते शास्त्रमें ऐसे कहा है ॥ २० ॥ सर्व शुनानुष्ठानके कहने वाले द्वादशांग है क्योंके द्वादशांग जे है वे रत्नाकर समुद्र अथवा रत्नाकी खानितुल्य है, तिस वास्ते जो शुनानुष्ठान है सो सर्व वीतरागकी आज्ञा होनेसें सुं

दर है तिस श्रुतरत्नाकरमें ॥ २१ ॥ मूल सूत्रोंके व्यवछेद हुए, और बिंदु मात्र संप्रतिकालमें धारण करते हूए अर्थात् बिंदु मात्र मूल सूत्रके रहे, तिस सूत्रसें सर्वानुष्ठानकी विधि क्योंकर जानी जावे, इस वास्ते आचरणासेंही सर्व कर्त्तव्यमें परमार्थ जाना जाता है ॥ २२ ॥

कहानि है के बहु श्रुतोंके क्रम करके जो प्राप्त हूइ है आचरणा सो आचरणा सूत्रके विरहमें सर्वानुष्ठानकी विधिकों धारण करती है, जैसें दीपकके प्रकाशसें भली दृष्टीवाले पुरुषोंने कोइक घटादिक वस्तु देखी है सो वस्तु दीपकके बूजगयें पीछेभी स्वरूपसें भूलती नही है, ऐसेंही आगम रूप दीपकके बूजगएभी आगमोक्त वस्तु आचरणासें सम्यक्दृष्टी पुरुष आचार्योंकी परंपरासें जानते हैं इसका नाम आचरणा कहते हैं ॥ २३ ॥

तथा धर्मीजनो मे पूर्वकालमें जीताथा और वर्त्तमानमें जीवे है अरु अनागत कालमें जीवेगा जैन शास्त्रमें कुशल तिसकों जित कहते है तिस जीतका नामही आचरणा कहते है ॥ २४ ॥

तिस वास्ते जो अज्ञातमूल होवे, जिसकी खबर

न होवे के यह आचरणा किस आचार्यनें किस का लमें चलाइ है, तिसकूं अज्ञातमूल कहते है ऐसी अज्ञात मूल आचरणा हिंसारहित और शुभध्यान की जननी होवे, अरु आचार्योंकी परंपराय करके प्राप्त होवे, तिस आचरणाकों सूत्रकी तरे प्रमाणभू त माननी चाहिये ॥ २५ ॥ इति भाष्यवचनात् आचरणाका स्वरूप.

तथा श्रीप्रवचनसारोद्धार वृत्तिमेंभी ऐसा लेख है. इयं स्तुतिश्चतुर्थी गीतार्थाचरणेनैव क्रियते गीतार्था-चरणं तु मूलगणधरभणितमिव सर्वं विधेयमेव सर्वैरपि मुमुक्षुभिरिति ॥ अस्य भाषा ॥ यह चोथी थुइ गीतार्थोंकी आचरणासें करीये है और गीतार्थों की जो आचरणा है, सो मूल गणधरोंके कथन क रें समान सर्व मोक्षार्थी साधुयोंकों सर्व करणे योग्य है. इस वास्ते चोथी थुइ जो कोइ निषेध करे सो मिथ्यात्वका हेतु है.

तथा जो कोइ चोथी थुइके अर्वाचीन शब्दका अर्वाक कालकी अंगीकार करी ऐसा अर्थ समजते है तिनकी समजकी बहु भूल है, क्योंके विचारामृ त संग्रह ग्रंथमें श्रीकुलमंमन सूरिजीयें ऐसा लि

खा है के "श्रीवीरनिर्वाणात् वर्षसहस्रे पूर्वश्रुतं व्य वच्छिन्नं ॥ श्रीहरिभद्रसूरयस्तदनु पंचपंचाशता वर्षैः दिवं प्राप्ताः तद्ग्रंथकरणकालाच्चाचरणायाः पूर्वमेव संभवात् श्रुतदेवतादिकायोत्सर्गः पूर्वधरकालेपि संभ वति स्मेति ॥

अस्यभाषा ॥ भगवंत श्रीमहावीरजीके निर्वाण सें हजार वर्ष व्यतीत हूए पूर्वश्रुतका व्यवच्छेद हूआ, तदपीछे पचपन (५५) वर्ष वीते श्रीहरिभद्रसूरिजी स्वर्ग प्राप्त हूए, वो श्रीहरिभद्रसूरिजीके ग्रंथकरण कालसें पहिलाही आचरणा चलती थी इस वास्ते श्रुतदेवतादिकका कायोत्सर्ग पूर्वधरोंके काल मेंभी संभवथा ॥

अब विचारणा चाहिये के पूर्वधरोंकी अंगीकार करी हूइ आचरणाका निषेध करणेवाला दीर्घ संसा री विना अन्य कौन हो सक्ता है? ऐसे चौथी थु इभी हरिभद्रसूरिजीके ग्रंथ करणेसें प्रथमही पूर्वधरों की आचरणासें चलतीथी क्योंके हरिभद्रसूरिकृत ललितविस्तरामें चौथी थुइका पाठ है, सो पाठ आगें लिखेंगे इसवास्ते अर्वाचीन कहो, चाहे आचरणा कहो, चाहे जीत कहो.

जेकर अर्वाचीन शब्दका अर्थ अन्यथा करीयें तो श्रीसिद्धसेनाचार्यकृत प्रवचनसारोद्धारकी टीका के साथ विरोध होता है, क्योंके श्रीसिद्धसेनाचार्यें चौथी थुइ आचरणासें करणी कही है.

तथा कोइ ऐसें कहेके ललितविस्तरा १४४४ ग्रंथोंके करनेवाले श्रीहरिभद्रसूरिजीकी करी हूइ नही है. किंतु अन्य किसी नवीन हरिभद्रसूरिकी रचित है, यह कहनाभी महामिथ्या है, क्योंके पंचाशककी टीकामें श्रीअभयदेवसूरिजी लिखते हैं के, जो ग्रंथ श्रीहरिभद्रसूरिजीका करा हूआ है, तिसके अंतमें प्रायें विरह शब्द है,॥ पंचाशक पाठः ॥ इह च विरह इति । सितांवर श्रीहरिभद्राचार्यस्य कृतेरंक इात ॥ यह विरह अंक ललितविस्तराके अंतमें है. और याकनी महत्तराके पुत्र श्रीहरिभद्रसूरिनें यह ललितविस्तरा वृत्ति रची है, ऐसाभी पाठ है तो फेर ललितविस्तरा प्राचीन हरिभद्रसूरिकृत नही, ऐसा वचन उन्मत्त विना अन्य कोइ कह सक्ता नही है.

तथा श्रीउपदेशपदकी टीकामे श्रीमुनिचंद्रसुरिजी ऐसा लिखते है ॥ तत्र मार्गो ललितविस्तराया मनेनेव शास्त्रकर्तेऽलक्षणो न्यरूपि मग्गदयाणमि

त्यादि ॥ अस्यन्नाषा ॥ तिहां जो मार्ग है सो ललितविस्तरामें इसही उपदेशपद शास्त्रके कर्त्ता श्री हरिन्नद्रसूरिजीने इस प्रकारके लक्षणवाला कहा है. इस कथनसे जौंनसें श्रीहरिन्नद्रसुरिजीने उपदेशपद ग्रंथ करा है, तिसही श्रीहरिन्नद्रसूरिजीने ललितविस्तरावृत्ति करी है, यह सिद्ध होता है ॥

प्रश्नः—उपमितन्नवप्रपंचकी आदिमें जो सिद्धऋषिजीने लिखा है, के यह ललितविस्तरावृत्ति मेरे श्रीगुरु हरिन्नद्रसूरिजीने मेरे प्रतिवोध करने वास्तें रची है इस लेखसे तो ललितविस्तरावृत्तिका कर्त्ता प्राचीन श्रीहरिन्नद्रसूरि सिद्ध नही होते है ?

उत्तरः—हे न्नव्य उपमितन्नवप्रपंचकी आदिमें सिद्धऋषीजीनें 'अनागतं च परिज्ञाय' इत्यादि श्लोकमें ऐसे लिखा है के श्रीहरिन्नद्रसूरिजीने मुजकों अनागत कालमें होनेवाला जानके मानुं मेरेही प्रतिवोध करने वास्ते यह ललितविस्तरावृत्ति रची है. और जो सिद्धऋषिजीने श्रीहरिन्नद्रसूरिकूं गुरु माना है, सो आरोप करके माना है. ऐसा कथन ललितविस्तरावृत्तिकी पंजिकामें करा है, इस वास्ते ललितविस्तरावृत्तिके रचने वाले १४४४ ग्रंथ कर्त्ता

श्रीहरिजद्रसूरिजी हुए है; इति आचरणास्वरूप ॥

पूर्वपक्ष ॥ श्रीवृहत्कल्पका जाप्यकी गाथामें तीन थुइकी चैत्यवंदना करनी कही है, असेही पंचाशकवृत्ति तथा श्राद्धविधि तथा प्रतिमाशतक, संघाचारवृत्ति, धर्मसंग्रह और तुमारा रचा हुआ जैनतत्त्वादर्शादि अनेक ग्रंथोमें यही कल्पजाप्यकी गाथा लिखके तीन थुइकी चैत्यवंदना कही है, तो फेर तुम क्यों नही मानतेहो ?

उत्तर—हे सौम्य हमतो जो शास्त्रमें लिखा है तथा जो पूर्वाचार्योंकी आचरणा है इन दोनोंकों सत्य मानते है; परंतु तेरेकों वृहत्कल्पका जाप्यकी गाथाका तात्पर्य नही मालुम होताहै, इस वास्ते तुं तीन थुइ तीन थुइ पुकारता है! क्योंके महाजाप्यमें नवजेदें चैत्यवंदना कही है, तिनमेंसें तेरी तीन थुइकी वंदनाका उठा जेद है; तथाच महाजाप्यपाठः ॥

एगनमोक्कारणं, होइ कणिठा जहन्नआ एसा ॥ जहसत्ति नमोक्कारा, जहन्निया जन्नइ विजेठा ॥ ५४ ॥ सच्चिय सक्कथयंता, नेया जेठा जहन्निया सन्ना ॥ सच्चिय इरिआवहिया, सहिया सक्कथय दंमेहिं ॥ ५५ ॥ मज्झिमकणिठि गेसा, मज्झिम मज्झिमउ होइ सा चेव ॥

चेइय दंमय थुइए, गसंगया सब मज्झिमया ॥ ५६ ॥
मज्झिम जेठा सच्चिय, तिन्नि थुई उ सिलोयतियजुत्ता
॥ उक्कोस कणिठा पुण, सच्चिय सक्कडाइ जुया ॥५७॥
थुइ जुयल जुयल एणं, डुगुणिय चेइय थयाइ दंमा जा
॥ सा उक्कोस विजेठा, निद्दिठा पुवसूरीहिं ॥ ५८ ॥
थोत्त पणिवाय दंमग, पणिहाण तिगेण संजुआएसा
॥ संपुन्ना विन्नेया, जेठा उक्कोसिआ नाम ॥ ५९ ॥

इनकी नाषा ॥ एक नमस्कार करनेसें जघन्यजघन्य प्रथम नेद ॥ १ ॥ यथाशक्ति बहुत नमस्कार करनेसें जघन्यमध्यम दूसरा नेद ॥ २ ॥ नमस्कार पीछे शक्रस्तव कहना, यह जघन्योत्कृष्ट तीसरा नेद ॥३॥ इरियावही, नमस्कार, शक्रस्तव, चैत्यदंमक एक, एकस्तुति यह कहनेसें मध्यमजघन्य चोथा नेद ॥४॥ इरियावही, नमस्कार, शक्रस्तव, चैत्यदंमक, एक थुई, लोगस्स, कहनेसे मध्यममध्यम पांचमा नेद ॥ ५ ॥ इरियावही, नमस्कार, शक्रस्तव, अरिहंत चेइयाणं थुई, लोगस्स सबलोए थुई, पुरकरवर, सुयस्स थुई, सिद्धाणंबुद्धाणं गाथा तीन इतना कहनेसें मध्यमोत्कृष्ट बठा नेद ॥६॥ इरियावही, नमस्कार, शक्रस्तवादिदंमक पांच, स्तुति चार, नमोत्थुणं, जावंति एक, जावंत एक,

स्तवन एक,जयवीयराय,यह कहनेसें उत्कृष्ट जघन्य सातमा नेद ॥ ७॥ आठ थुई, दो-वार चैत्यस्तवादि दंमक, यह कहनेसें उत्कृष्ट मध्यम आठमा नेद ॥७॥ स्तोत्र, प्रणिपात दंमक, प्रणिधान तीन, इनो करके सहित आठ थुई, दो वार चैत्यस्तवादि दंमक, यह कहनेसें उत्कृष्टोत्कृष्ट नवमा नेद ॥ ए ॥ नाष्यं ॥ एसा नवप्पयारा, आइन्ना वदणा जिणमयंमि ॥ कालोचियकारीणं, अणग्गहाणं सुहा सवा ॥ ६० ॥ अस्यार्थः– यह पूर्वोक्त नव प्रकारे, नवनेदें, चैत्यवंदना श्रीजिनमतमें आचीर्ण है, आग्रहरहित पुरुष उचित कालमें जिसकालमें जैसी चैत्यवंदना करणी उचित जाणे, तिस कालमें तैसी चैत्यवंदना करे, तो सर्व नवनेद शुद्ध है, मोक्षफलके दाता है ॥ ६० ॥ नाष्यं ॥ उक्कोसा तिविहाविहु, कायवा सत्तिउ उनय कालं ॥ सड्ढेहिउ सविसेसं, जम्हा तेसिं इमं सुत्तं ॥६१ ॥ अर्थ – उत्कृष्ट तीन नेदकी चैत्यवंदना, शक्तिके हूए उनय कालमें करनी योग्य हे. पुन. श्रावकोंने तो सविसेस अर्थात्,विशेष सहित करनी चाहियें,क्योंके ? श्रावकोंकेवास्ते ऐसा सूत्र कहा हे ॥ ६१ ॥ नाष्यं ॥ वंदइ उनयउ कालं, पि चेइयाइ थयथुई परमो ॥ जि

एवर पडिमागरधू, व पुंप्फगंधच्चणुज्जुत्तो ॥ ६२ ॥ अर्थः– श्रावकजन उत्तयकालमें स्तोत्र स्तुति करके उत्कृष्ट चैत्यवंदना करे, कैसा श्रावक जिनप्रतिमाकी अगर, धूप, पुष्प, गंध करके पूजा करनेमें अति उद्यम संयुक्त होवे ॥ ६२ ॥ जाष्यं ॥ सेसा पुणछप्नेया, कायव्वा देस काल मासज्ज ॥ समणेहिं सावएहिं, चेइय परिवाडि माईसु ॥ ६३ ॥ अर्थः– शेष जघन्यके तीन अरु मध्यमके तीन मिलके छ नेद चैत्यवंदनाके जो रहे है, सो देश काल देखके साधु श्रावकनें चैत्य परिवाडी आदिमें करणे आदि शब्दसें मृतक साधुके परठव्या पीछें जो चैत्यवंदना करीयेंहै तिसमें करणे॥६३॥

इस वास्ते हे सौम्य छहा नेद तीन थुइसें जो चैत्यवंदना करनेका है, सो चैत्यपरिवाडिमें करणेका है, ए परमार्थ है, अरु तुम जो कल्पजाष्यकी इस गाथाकूं आलंबन करके चोथी थुइका तथा प्रतिक्रमणेकी आद्यंत चैत्यवंदनाकी चोथी थुइका निषेध करते हो, सो तो दहिंके बदले कपास जक्षण करते हो ! इस्सें यहजी जाननेमें आता है के जैनमतके शास्त्रोंकाजी तुमको यथार्थ बोध नही है,तो फेर चौथी थुइका निषेध करनाजी तुमकों उचित नही है ॥ जणि

थंच श्रीकल्पनाष्ये गाथा॥ निस्सकड मनिस्सकडे,चेइ
ए सव्वहिं थुई तिन्नि॥ वेलंच चेइयाणिय, नाउं इक्किक्कि
या वावि॥ १॥ व्याख्या—एक निश्राकृत उसकों
कहते हैं के जो गच्छके प्रतिबंधसे बना है,जैसा के?
यह हमारे गच्छका मंदिर है, दूसरा अनिश्राकृत सो
जिस उपर किसी गच्छका प्रतिबंध नही है, इन सर्व
जिनमंदिरोमें तीन थुइ पढनी जेकर सर्व मंदिरोमें
तीन तीन थुइ पढतां बहुत काल लगता जाने अरु
जिनमंदिरनी बहोत होवे तदा एक एक जिनमंदिर
में एकेक थुइ पढे, इस मुजब यह कल्पनाष्यगाथामें
निःकेवल चैत्यपरिपाटीमें तीन थुइकी चैत्यवंदना
पूर्वोक्त नव नेदोमेंसें छठे नेदकी करनी कही है.
परंतु प्रतिक्रमणके आद्यंतकी चैत्यवंदना तीन थुइ
की करनी किसीनी जैनशास्त्रमें नही कही है.

यही कल्पनाष्यकी गाथाका लेख हमारे रचे
हुए जैनतत्त्वादर्श पुस्तकमें है, तिस लेखका यही
उपर लिखाहूआ अनिप्राय है, तो फेर रत्नविजयजी
अरु धनविजयजी जैनशास्त्रका और हमारा अनि
प्राय जाने विना लोकोंके आगें कहते फिरते हैं के,
आत्मारामजिनेनी जैनतत्त्वादर्शमें तीनही थुइ क

ही है, असा कथन करके नोले लोकोंमें प्रतिक्रम णके आद्यंतकी चैत्यवंदनामें चोथी थुइ गेडावते फिरते है. तो हमारा अनिप्रायके जाने विनाहि लो कोंके आगें जूग हमारा अनिप्राय जाहेर करना यह काम क्या सत्पुरुषोंको करणा योग्य है? जे कर आप दोनोकों परनव विगडनेका नय होवेगा, नव इस कल्पनाष्यकी गाथाकों आलंबके प्रतिक्रमण की आद्यंत चैत्यवंदनामें चौथी थुइका कदापि निषे ध न करेंगे, अन्यथा इनकी इज्ञा. हमतो जैसा शा स्त्रोमें लिखा है, तैसा पूर्वाचार्योंके वचन सत्यार्थ जानके यथार्थ सुना देते है, जो नवनीरु होवेगा, तो अवश्य मान्य लेवेगा ॥ इति कल्पनाष्य गाथा निर्णयः ॥

जेकर कोइ कहेगें श्रीहरिनइसूरिजीने पंचाशक जीमें तीनही प्रकारकी चैत्यवंदना कही है, परंतु न वप्रकारकी नही कही है, इस वास्ते हम नव नेद नही मानेंगे. तिनकी अज्ञता दूर करणेकू कहते है ॥

नाष्यं ॥ ए एसिंनेयाणं, उवलरकणमेव वन्नि या तिविहा ॥ हरिनद्द सूरिणा विद्धु, वंदण पंचास ए एवं ॥ ६५ ॥ णवकारेण जहन्ना, दंमय थुइ जुअ

ज मज्झिमा नेया ॥ संपुन्ना उक्कोसा, विहिणा खलु वंदणा तिविहा ॥ ६६ ॥ णवकारेण जहन्ना, जहन्नयजहन्निया इमाखाया ॥ दंमय एगथुइए, विन्नेया मझमझमिया ॥ ६७ ॥ संपुन्ना उक्कोसा, उक्कोसुक्कोसिया इमा सिठा ॥ उवलरकणंखु एयं, दोसह दोसह सजाईए ॥ ६८ ॥ इनका अर्थ कहते हैं ॥

अर्थः—इन पूर्वोक्त नव भेदोंके उपलक्षण रूप तीन भेद चैत्यवंदनाके, वंदना पंचाशकमें श्रीहरिभद्र सूरिजीनेभी कथन करे है ॥ ६५ ॥ तिसमें एकतो नमस्कार मात्र करणे करके जघन्य चैत्यवंदना ॥ १॥ दूसरी एक दंमक अरु एक स्तुति इन दोनोके युगलसें मध्यम चैत्यवंदना जाननी ॥ २ ॥ तीसरी संपूर्ण उत्कृष्टी चैत्यवंदना जाननी ॥ ३ ॥ विधि करकें वंदना तीन प्रकारे है ॥ ६६ ॥ नमस्कार मात्र करके जो जघन्य वंदना कही है ॥ सो जघन्यवंदनाका प्रथम जघन्य जघन्य भेद कहा है ॥ १ ॥ और दूसरी जो एक दंमक अरु एक स्तुतिसें मध्यम चैत्यवंदना कही है सो मध्यम मध्यम नामा मध्यम चैत्यवंदनाका दूसरा भेद कहा है ॥ २ ॥ ६७ ॥ संपुन्ना उक्कोसा यह पाठसें संपूर्ण उत्कृष्ट उत्कृष्ट वं

दनाका तीसरा उत्कृष्टोत्कृष्ट नेद कहा है ॥ इन तीनो उपलक्षण रूप नेद कहनेसें शेष एकेक वंदनाके स्वजातीय दो दो नेदन्नी ग्रहण करना. एवं सर्वे नव नेद चैत्यवंदनाके पंचाशकजीकी गाथायोमें सिद्ध हुए हैं ॥ ६७ ॥ यह श्रीहरिन्नद्रसूरिजी जैनमतमें सूर्यसमान थे और उत्तराध्ययनजीकी बृहद्वृत्तिका कर्त्ता श्रीशांतिसूरिजी महाप्रन्नावक,इनके रचे प्रकरण और नाष्यकों जो कोइ जैनमतिनाम धराके प्रामाणिक न माने तिसके मिथ्यादृष्टि होनेमें जैनमति कोइ नव्य शंका नही करसक्ता है, इन दोनों आचार्योंनें चोथी थुइ प्रमाणिक मानी है, सो आगे लिखेंगे. इति नवन्नेदसें चैत्यवंदनाका स्वरूप ॥

प्रश्नः—श्रीव्यवहारसूत्रकी नाष्यमें तीन थुइसें चैत्यवंदना करनी कही है. सो गाथा यह है ॥ तिन्निवा कट्टई जाव, थुइन तिसिलोइया ॥ ताव तब अणुन्नायं, कारणेण परेणवि ॥ १ ॥ अस्यार्थः ॥ श्रुतस्तवानंतरं तिस्रः स्तुतीस्त्रिश्लोकिकाः श्लोकत्रयप्रमाणा यावत् कुर्वते तावत्तत्र चैत्यायतने स्थानमनुज्ञातं कारणवशात् परेणाप्युपस्थानमनुज्ञातमिति वृत्तिः ॥ अस्य नाषा ॥ श्रुतस्तवानंतर तीन थुइ

तीन श्लोक प्रमाण जहांतक कहियें तहांतक देहरे में रहनेकी आज्ञा है, कारण होवेतो उपरांतभी रहे ॥ असा पाठ शास्त्रमें है तो फेर आप तीनथुइ की चैत्यवंदना क्यों नही मानतेहो ? ॥

उत्तरः—हे सौम्य तेरेकों इस गाथाका यथार्थ तात्पर्य मालुम नही है, इस वास्ते तुं तोतेकी तरें तीन थुइ तीन थुइ कहता है. इस गाथाका यह तात्पर्य है, सो तुं सुणके विचार ॥ भाष्यं ॥ सुत्ते एगविहच्चिय, भणियातो भेय साहण मज्जुत्तं ॥ इयसूलमईकोई, जं पइ सुत्तं इमं सरिउ ॥ २२ ॥ तिन्निवा कट्टई जाव, थुइउ तिसिलोइया ॥ ताव तह अणुन्नायं, कारणेण परेणवि ॥ २३ ॥ भणइ गुरुतं सुत्तं, चियइ वंदणविहि परूवगं न भवे ॥ निक्कारणजिण मंदिर, परिभोग निवारगत्तेण ॥ २४ ॥ जं वा सद्दो पयडो, परकंतर सूयगो तहिं अहि ॥ संपुन्नं वा वंदइ, कढइ वा तिन्निवथुई ॥ २५॥ एसोवि हु भावथो, संभवयइ इमस्स सुत्तस्स ॥ ता अन्नथं सुत्तं, अन्नथ न जोड्वं जुत्तं ॥ २६ ॥ जइ एत्तिमेत्तंविय, जिण वंदण मणुमयं सुएहुंत ॥ थुइथोत्ताइ पवित्ती, निरथिया होय सवावि ॥ २७ ॥ संविग्गा विहि रसिया,

गीयत्र तमाय सूरिणो पुरिसा ॥ कहते सुत्त विरुद्धं, समायारीं परूवेंति ॥ २७ ॥ इनका अर्थ कहते है. सूत्रमें एक प्रकारेही चैत्यवंदना कही है, इस वास्ते नव भेद कहने अयुक्त है. ऐसा अर्थ कोइ स्थूलबुद्धि वाला इस सूत्रका स्मरण करके कहता है ॥ २२ ॥ तीनथुइ तीनश्लोक परिमाण जहांतक कहियें तहांतक जिन चैत्यमें साधुकों रहनेकी आज्ञा है, कारण होवे तो उपरांतभी रहे ॥ २३ ॥

अब गुरु उत्तर देते हैं ॥ तिन्निवा इत्यादि जो सूत्र है सो चैत्यवंदनाके विधिका प्ररूपक नही है, किंतु विना कारण जिनमंदिरके परिभोग करनेका निषेध करने वाला है इस हेतु करके चैत्यवंदनाके विधिका प्ररूपक नही है ॥ २४ ॥ तथा जो इस गाथामें वा शब्द है सो प्रगट पक्षांतरका सूचक तिहां है, इस वास्ते संपूर्ण चैत्यवंदना करे, अथवा तीन थुइ कहे ॥ २५ ॥ यहभी भावार्थ इस सूत्रका संभवे है, तिस वास्ते अन्यार्थका प्ररूपक सूत्र अन्यत्रार्थमे जोडना युक्त नही है ॥ २६ ॥ जेकर तीनथुइ मात्रही चैत्यवंदना करनेकी सूत्रमें आज्ञा होवे, तब तो थुइ स्तोत्रादिककी प्रवृत्ति सर्व निरर्थक होवेगी

॥ २७ ॥ संविग्न गीतार्थे विधिके रसिये अतिशय करके गीतार्थसूरि पुरुष जे पूर्वे होगए हे, ते सूत्र विरुद्ध नवन्नेद चैत्यवंदनाकी समाचारी कैसे प्ररूपणा करते ॥ २७ ॥ इस वास्ते हे सौम्य इस तेरी कही गायासे चौथी थुइका निषेध और तीन थुइकी चैत्य वंदना सिद्ध नही होती हे. तो फेर तुं क्युं हठ रूपीये जालमे फसता हे ॥

तथा पक्षांतरें इस तिन्निवा इत्यादि गाथाका अर्थ श्रीसंघाचार न्नाष्यवृत्तिमें श्रीधर्मघोषाचार्ये अैसा करा हे ॥ तथाच संघाचार वृत्तिः ॥ डुन्निगंधमलस्सावि, तणु रप्पे सएहाणिया ॥ उन्नउवा उवहोचेव, तेण ठंतिनचेइए ॥ १ ॥ तिन्निवा कट्टई जाव, थुइउ तिसिलोइआ ॥ ताव तछ अणुन्नायं, कारणेण परेणवि ॥ २ ॥ एतयोर्न्नावार्थः साधवश्चैत्यगृहे न तिष्ठंति अथवा चैत्यवंदनांते शक्रस्तवाद्यनंतरं तिस्रः स्तुतीः श्लोकत्रयप्रमाणाः प्रणिधानार्थं यावत्कुर्वंते. प्रतिक्रमणानंतरं मंगलार्थं स्तुतित्रयपाठवत् तावच्चैत्यगृहे साधूनामनुज्ञातं निष्कारणं न परत. ॥

न्नाषाः—इन दोनो गाथांका न्नावार्थ यह हे॥साधुका शरीर डुर्गंधरूप डुर्गंधवाला होनेसें चैत्यगृहमें मर्यादा

उपरांत न रहे. सो मर्यादा यह है के, चैत्यवंदनाके अं तमें शक्रस्तवादिके अनंतर जो तीन थुई तीन श्लोक परिमाण प्रणिधानके वास्ते प्रतिक्रमणाके अनंतर मं गलार्थ स्तुति तीनके पाठवत् कही है, तहां ताइं चैत्य जिनमंदिरमे रहनेकी आज्ञा है, कारणविना उपरांत न रहे. तात्पर्य यह हैके, संपूर्ण चैत्यवंदनाके करें पी छे विना कारण साधु जिनमंदिरमें न रहे इस व्याख्या न रूप वन्हिने हे सौम्य तेरे चोथी थुईके निषेध कर णे रूप इंधनकों भस्मसात् करडाला है, इस वास्ते ते रा तीन थुईका मत पूर्वाचार्योंके मतसें विरुद्ध है, तो अब तुंभी इसमतकों जलांजली दे. इति व्यवहार भाष्य गाथा निर्णयः ॥

पूर्वपक्षः—आवश्यकादि शास्त्रोंमें मृतक साधुके प रठ्या पीछें तीनथुईकी चैत्यवंदना कही है तिन शा स्त्रोंका पाठ यह है ॥ चेइ घरु उवस्सए, वाहाइं ती तउ थुई तिन्नि ॥ सारवण व सहीए, करेए सव्वं व सहि पालो ॥ १ ॥ अविहि परिठ्ठवणा ए, काउस्सगो उ गुरु समीवंमि ॥ मंगल संति निमित्तं, थउ त्तउ अ जिय संतीणं ॥ २ ॥ ते साहुणो चेइय घरे ता परिहा यं तीहिं थुईहिं चेइयाणि वंदिउ आयरिय सगासे इ

रियावहिंयं पडिक्कमिउं अविहि परिठावणिया ए काउस्सग्गो कीरइता हे मंगल पढ्ढं तउ अन्ने विदोव ए हायंते कट्टंति उवस्सए वि एवं चेइय वंदण वदइ त्ति ॥ कल्पचतुर्थोद्देशकसामान्यचूर्णौ ॥ कल्प विशेष चूर्णि कल्पबृहद्भाष्यावश्यकवृत्तिकृद्भिरन्यथा व्याख्यातं । यदुत चैत्यवंदनानंतरमजितशांतिस्तवो नणनीयो नो चेत्तदा तस्य स्थानेऽन्यदपि हीयमानं स्तुतित्रयं नणनीयमिति । तथाहि चेइय घर गाहा । चेइय घर गच्छंति चेइयाइं वंदित्ता संति ॥ निमित्तं अजियसंतिछउ परियट्टिघइ तिन्नि वाथुती उ परिहायंती उ कट्टिवंति तउ आगंतु आयरिय सगासे अविहि पारिठावणीयाए काउस्सगो कीरइ. कल्पविशेष चू० ३०४ तथा चेइय घरुवस्स एवा. आगम्मुस्सग्ग गुरुसमीवम्मि ॥ अविहि विगिंचणी याए, संति निमित्तं थतो तछ ॥ १ ॥ परिहायमाणियाउ, तिन्नि थुईउ हवति नियमेण ॥ अजियसंतिछगमा, इयाउक मसो तहिं नेउ ॥ २ ॥ कल्पबृहद्भाष्ये तथा उघाणाई दोसाउ, हवंति तछेव काउसग्गंमि आगम्मुवस्सयं गुरु सगासे अविहि ए उस्सग्गो कोइ नणेद्या तछेव किमिति काउसग्गो न कीरइ नन्नइ उघाणाई दो

सा हवंति तउ आगम्म चेइय घरं गछंति चेइयाणि वंदित्ता संतिनिमित्तं अजिय संतिछयं पढंति तिन्नि वा थुतीउ परिहायमाणीउ कट्टिझंति तउ आगंतु आ यरियसगासे अविहि विगिंचणियाए काउस्सग्गो की रइ. इत्यावश्यकवृत्तौ॥

अस्य नाषा॥ ते मृतक साधुके परिठवनेवाले साधु चैत्यघरमे प्रथम परिहायमान तीन थुइसें चै त्यवंदना करके आचार्यके समीपें "इरियावहियं" पडिक्कमिके अविधि पारिठावणीयांका कायोत्सर्ग क रे॥मंगलपछ२०॥ तद पीछें अन्यत् अपि दो हाय मा न कहे, उपाश्रयमेंनी असेही करना परं चैत्यवंदना न करणी यह कथन बृहत्कल्पके चतुर्थ उद्देशेकी चूर्णीमें है, और बृहत्कल्पकी विशेष चूर्णिमें तथा कल्पबृहद्भाष्यमें तथा आवश्यकवृत्तिकारें अन्यथा व्याख्यान करा है, सो यह है॥ चैत्यवंदनाके अनं तर अजितशांतिस्तवन कहना जेकर अजितशांतिस्त वन न कहे तो तिस अजितशांतिके स्थानमें अन्यत् हायमान तीनथुइ कहनी, सोइ दिखाते है,॥ चेइ यघरगाहा॥ चैत्यघरमें जावे तहां चैत्यवंदना कर के शांतिके निमित्त अजितशांतिस्तवन कहना, अथ

वा तीन थुइ परिहायमान कहे तदपीछें आचार्य स
मीपें आकर अविधिपरिठावणियाका कायोत्सर्ग कर
ना, यह कल्पविशेषचूर्णिके चतुर्थ उद्देसेमें कहा है ॥
तथा चैत्यघर वा उपाश्रयमें आकर के गुरु समीपे
अविधि परिठावणियांका कायोत्सर्ग करना और शां
तिनिमित्त स्तोत्र कहना ॥१॥ परिहायमान तीन थुइ
नियम करके होती है, अजितशांतिस्तवादिक क्रमसें
तहां जानना ॥२॥ यह कथन कल्पवृहत् भाष्यमें है॥
तथा कोइ कहे तिहांही कायोत्सर्ग क्यों नही
करते ? गुरु कहते हैं यहां उड्डानादि दोष होते है.
तिसके लीये तहांसे आ कर चैत्यघरमें जावे, तहां
चैत्यवंदना करके, शांतिनिमित्त अजितशांतिस्तवन
पढे अथवा हायमान तीन थुइ कहे, तदपीछें आप
ने स्थानपर आ करके आचार्य समीपे अविधि परिठा
वणियांका कायोत्सर्ग करे असा कथन आवश्यक
वृत्तिमें करा है. इहां सामान्य चूर्णीमें तीन थुइमें
चैत्यवंदना मृतकसाधुके परठवनेवाले साधुयोंकों
करनी कही है, सो मध्यम चैत्यवंदनाका मध्यमो
त्कृष्ट तीसरा भेद है, अरु पूर्वोक्त नव भेदोंमें यह
छठा भेद है. सो तो एक आचार्यके मते मृतक परि

छ्यां पीछे करनी, हम मानतेही है. शेष लेख कल्पविशेष चूर्णि, कल्पवृहभाष्य, अरु आवश्यक वृत्तिमें जो है, तिसमें तो तीन थुइसें चैत्यवंदना करनी कहीही नही है. इस वास्ते जो कोइ इन पूर्वोक्त सूत्रोंका पाठ दिखलाय कर नोले जीवोंकी प्रतिक्रमणके आद्यंतके चैत्यवंदनाकी चोथी थुइ छुडावे तो तिसकों निःसंदेह उत्सूत्र प्ररूपक कहना चाहियें; क्योंके? जो कोइ हाथीके दांत देखे चाहे तिसकों कोइ गर्दनका शृंग दिखावे तो क्या वुह बुद्धिमान गिना जाता है! इति कल्पसामान्यचूर्णि, कल्पविशेषचूर्णि कल्पबृहभाष्य अरु आवश्यकवृत्तिनिर्णयः ॥

पूर्वपक्ष—श्रीवंदनापइन्नेमें तीन थुइसें चैत्यवंदना करनी कही है, सो तुम क्यों नही मानते हो?

उत्तरः—हे सौम्य १ नावनगर, २ घोघा, ३ जामनगर ४ नींवडी, ५ पाटण, ६ राजधनपुर, ७ वडोदरा, ८ खंनात, ९ अहमदावाद, १० सूरत, ११ वीकानेर इत्यादि स्थानोमें हमने अनुमानसे वीश ज्ञानभंडारोंका पुस्तक देखे, परंतु वंदनापइन्ना किसी नंमारमें हमकों देखनेमें नही आया, इस्से विचार उत्पन्न हूआके ऐसे वडे वडे पुरातन नंमारोंमेसें कोइनी नं

भारमें यह पुस्तक हमारे हस्तगत न नया? तो क्या यह वंदनापइन्ना श्रीनद्रबाहु स्वामीने रचा है? किं वा नद्रबाहु स्वामीजीके नामसें किस तीन थुइ माननेवाले मतपक्षीने रच दीया है? जेकर श्री नद्रबाहु स्वामीका रचा सिद्ध होवे तोनी इस पइन्नेमें चौथी थुइका निषेध नही है, और जो इस पइन्नेमें तीन थुइसें चैत्यवंदना करनी कही है, सो पूर्व कहे जो नव नेदोमेंसें उठा मध्यमोत्कृष्टनेदकी तीन थुइसें चैत्यवंदना करनी कही है, यह चैत्यवदना श्रीजिनमंदिरमें करनी कही है परंतु प्रतिक्रमणकी आद्यंतमें चैत्यवंदना करनी नही कही है. इस वास्ते इसपइन्नेसें जो तेरेको न्रांति होती है सो गेड दे॥ इति पइन्ना निर्णयः॥

पूर्वपक्षः—देवसिप्रतिक्रमणकी आदिमें और राइ प्रतिक्रमणके अंतमें चैत्यवंदना करनी किसी शास्त्रमें नी नही कही है, तो फेर तुम क्यों करते हो? ॥ १ ॥ और चौथी थुइ चैत्यवंदनामें करते हो, सो किस किस शास्त्रमें है ॥ २ ॥ अरु श्रुत देवताका कायोत्सर्ग किस किस शास्त्रमें करना कहा है? ॥ ३ ॥

उत्तरपक्षः—हम इन तीनो प्रश्नोका एक साथही उत्तर देते है॥ श्रीप्रवचनसारोद्धारे॥ पडिक्कमणे चे

इह्रे, नोयण समयंमि तहय संवरणे ॥ पडिक्कम
ण सुयण पडिबोह, कालियं सत्तहा जइणो ॥ ए२ ॥
पडिक्कमउ गिहिणो विहु, सत्तविह पंचहाउ इयरस्स ॥
होइ जहन्नेण पुणो.तीसुवि संजासु इय तिविहं ॥ए३॥
अत्रवृत्तिः ॥ साधूनां सप्तवारान् अहोरात्रमध्ये नव
ति चैत्यवंदनं गृहिणः श्रावकस्य पुनश्चैत्यवंदनं प्राकृ
तत्वाल्लुप्तप्रथमैकवचनान्तमेतत् । तिस्रः पंच सप्तवा
रा इति । तत्र साधूनामहोरात्रमध्ये कथं तत्सप्तवा
रा नवंतीत्याह पडिक्कमणेत्यादि । प्राज्ञातिक प्रतिक्र
मणपर्यंते ततश्चैत्यगृहे तदनु नोजनसमये तथाचेति
समुच्चये नोजनानंतरंच संवरणे संवरणनिमित्तं प्र
त्याख्यानंहि पूर्वमेव चैत्यवंदने कृते विधीयते तथा
संध्यायां प्रतिक्रमण प्रारंने तथा स्वापसमये तथा
निज्ञ.मोचनरूप प्रतिबोध कालिकंच सप्तधा चैत्यवंद
नं नवति यतेर्जातिनिर्देशादेकवचनं यतीनामित्यर्थः ।
गृहिणः कथं सप्तपंचतिस्रो वारांश्चैत्यवंदनमित्याह
पडिक्कमउइत्यादि । द्विसंध्यं प्रतिक्रामतो गृहस्थस्या
पि यतेरिव सप्तवेलं चैत्यवंदनं नवति । यः पुनः
प्रतिक्रमणं न विधत्ते तस्य पंचवेलं जघन्येन तिसृष्व
पि संध्यासु ॥

अस्य नाषा ॥ साधुयोंकों एक अहोरात्रिमें सा तवार चैत्यवंदणा करनी और श्रावकोंकों तीनवार, पांचवार अरु सातवार करनी, तिसमें प्रथम सा धुयोंकों एक अहोरात्रिमें सातवार चैत्यवंदना कि सतरेंसे होवे सो कहते है ॥ पडि० ॥ एक प्रनातके प्रतिक्रमणेके पर्यंतमें, दूसरी तदपीछे श्रीजिनमंदिर में जाकर करनी, तदपीछे तीसरी नोजन समयमें, तदपीछे चौथी नोजन करके पीछे चैत्यवंदना करके प्रत्याख्यान करे. पांचमी संध्याके प्रतिक्रमणेकी आ दिमें प्रारंनमें, छठी रात्रिमें सोनेके समयमें, सात मी सूतां उठ्या पीछे करनी यह साधुयोंके चैत्यवं दन करनेका वखत कह्या. और श्रावकतो जो उन्न यकालमें प्रतिक्रमणा करता होवे सो तो साधुकी त रे सात वार चैत्यवंदना करे, अरु जो पडिक्कमणा न करे सो पांचवार चैत्यवंदना करे, और जघन्यसें ज घन्य तीनवार करे इस पाठमें पडिक्कमणेकी आद्यं तमें चार थुइकी चैत्यवंदना करनी कही है ॥ १ ॥ इसीतरे श्रीअजितदेवसूरि अर्थात् वादीदेवसूरिजिन का करा चौरासी सहस्र (८४०००) श्लोक प्रमाण स्याद्वाद रत्नाकर ग्रंथ है, तिनोकी करी यतिदिनच

यमिंत्री यह चोशठमी गाथाका पाठ है ॥ पडिक्कमणे चेइहरे, नोयणसमयंमि तहय संवरणे ॥ पडिक्कमण सूयण पडिवो ह, कालियंसत्तहा जइणो ॥ ६४ ॥ यह चौशठमी गाथाका अर्थ उपर वत् जानना ॥ ३॥ इसीतरेंका पाठ प्रतिक्रमणेकी आदिमें चारथुइसें चैत्य वंदन करणेका ३ धर्मसंग्रह, ४ वृंदारुवृत्ति, ५ श्राद्धविधि, ६ अर्थ दीपिका, ७ विधिप्रपा, ८ खरतर बृहत्समाचारी, ए पूर्वाचार्यकृत समाचारी, १० तपगछे श्रीसोमसुंदरसूरिकृत समाचारी, ११ तपगछे श्रीदेवसुंदरसूरिकृत समाचारी, तथा औरनी श्रीकालिकाचार्य सूरि संतानीय श्रीनावदेवसूरिविरचित यतिदिनचर्यादि अनेक शास्त्रोंमें पडिक्कमणेकी आद्यंतमें चार थुइसें चैत्यवंदना करनी कही है. यह ग्रंथोकों उल्लंघन करकें रत्नविजयजी अरु धनविजयजी जो पडिक्कमणेकी आद्यंतमें चार थुइकी चैत्यवंदना निषेध करते है, और तीन थुइकी चैत्यवंदना करनेका उपदेश देतें है. यह इनका मत जैनमतके शास्त्रोंसे और पूर्वाचार्योंकी समाचारीयोंसे विरुद्ध है. इसके वास्तें जैनधर्मी पुरुषोंकों इनकी श्रद्धा न माननी चाहियें. कदाचित् पूर्वकालमें अजाण पणेसें माननेमें आ

ई होवे तो, वो तीन करण अरु तीन योगसें वोसरा
वणी चाहीयें, क्योंके? एकतो जैनशास्त्र विरोधी, दूस
रा पूर्वाचार्योंकी समाचारियोंका विरोधी, तीसरा च
तुर्विध श्रीसंघका विरोधी यह विरोध करणेवाला क
दापि संसार समुद्रसें न तरेंगा ॥

पूर्वाचार्योंका विरोधी इसी तरें होता है, के एक श्री
हरिभद्रसूरि १४४४ ग्रंथोके कर्त्ता, दूसरा श्रीनेमिचंद्र
सूरि प्रवचनसारोद्धार ग्रंथका कर्त्ता, तीसरा श्रीसिद्ध
सेनसूरि प्रवचनसारोद्धारकी टीकाका कर्त्ता, चौथा श्री
बप्पभट्ट सूरि आम राजाकों प्रतिबोध करणे वाला, ति
नोने चोवीश तीर्थकरोंकी एकेक थुइके साथ तीनती
न थुइ दूसरी करी है. तिसमें एक सर्वजिनोकी, एक
श्रुतज्ञानकी अरु एक शासनदेवताकी इसीतरें छानवे
एछ थुइ करी है, जिनका जन्म विक्रम संवत् ८०२
की सालमें हूआ है. तथा दूसरा श्रीजिनेश्वर सूरिका
शिष्य और नवांगी वृत्तिकार श्रीअभयदेव सूरिका गु
रुभाइ तिसने शोभन स्तुतिमें चोवीशजिनके संबंधसें
चौवीश चोकडे छानवे थुइ करी है इस्से श्रीअभयदेव
सूरिजी नवांगी वृत्तिकारक और तिनके गुरु श्रीजिने
श्वर सूरि प्रमुख गुरुपरंपरायसें सर्व चार थुइ मानतेथे.

जेकर चौथी थुइ पूर्वोक्त पुरुषो नही मानतेथे ऐसा कहेगे तो तिनके शिष्य और गुरु नाई किस वास्ते चौथीथुइकी रचना करते? तथा उत्तराध्ययनसूत्रकी वृत्तिकारक श्रीशांतिसूरिजीने संघाचारचैत्यवंदन महाभाष्यमें चार थुइ कही है; तथा श्रीजगच्चंद्रसूरि क्रियाउद्धारका कर्त्ता, तपस्वी, महाप्रभाविक, राणाकी सभामें तेतीस ३३ क्षपणकाचार्योंको वादमें जीत्या, तपाबिरुद धारक तिनका शिष्य परमसंवेगी, ज्ञानभास्कर, श्रीदेवेंद्रसूरिजीनें लघुभाष्यमें चारथुइ कही है. तथा श्रीबृहद्गछैकमंडन श्रीमुनिचंद्रसूरिजी और तिनका शिष्य श्रीवादी देवसूरिजीने ललितविस्तराकी पंजिका और यतिदिनचर्यामें चार थुइ कथन करी है, तथा नवांगी वृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरिजी के शिष्य श्रीजिनवल्लभसूरिजीने समाचारीमें चार थुइ कथन करी है, तथा कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचंद्रसूरिजीनें योगशास्त्रमें चार थुइ कथन करी है, तथा श्रीधर्मघोषसूरिजीने संघाचारवृत्तिमें चार थुइ कथन करी है, तथा श्रीकुलमंडनसूरिजी तथा श्रीसोमसुंदरसूरि तथा देवसुंदरसूरि तथा नरेश्वरसूरि तथा श्रीभावदेवसूरि तथा तिलकाचार्य तथा श्रीजिनप्रभसूरिजी

फुरोज बादशाह्का प्रतिबोधनेवाला तथा श्रीजयचंद् सूरिजी इनोने क्रमसें विचारामृतसंग्रहमें अपनी अपनी रची तीन समाचारीयोंमें, यतिदिनचर्यामें, समाचारीस्वकीयमें, विधिप्रपामें, प्रतिक्रमणा गर्भित हेतु ग्रंथमें, चैत्यवंदनामें चार चार थुई कहनी कथन करी है. तथा श्रीमानविजय उपाध्यायजीने तथा श्रीमत्यशोविजय उपाध्यायजीने तथा श्रीनमि नामा साधुने तथा तरुणप्रनसूरिजीने क्रमसें धर्मसंग्रहमें, प्रतिक्रमणाहेतुगर्भितमें, षडावश्यकमें, षडावश्यक बालावबोधमें, चार थुई कहनी कही है, इत्यादि दूसरेनी अनेक आचार्योंने चार थुई कहनी कही है, इन सर्व आचार्योंकी गुरुपरंपरा और शिष्यपरंपरासे हजारो आचार्योंनें चारथुई मान्य करी है. इस वास्ते हमकों बडा शोक उत्पन्न होताहै के श्रीजिनशास्त्रोंके और हजारो आचार्योंके और श्रीसंघके विरुद्ध पंथ चलाने वाले रत्नविजयजी और धनविजयजी इनका क्योंकर कल्याण होवेगा ! और इनोंका कहना मानने वाले नोले श्रवकोंकीनी क्या दशा होवेगी ?

अथाग्रे कितनेक पूर्वोक्त ग्रंथोंका पाठ लिखते है. जिसके वांचनेसे नव्यजीवोंकों मालुम हो जावे के, र

त्नविजयजी अरु धनविजयजी जो चौथी थुइका नि षेध करते है, सो वडा अन्याय करते है !

प्रथम ललितविस्तरा ग्रंथका पाठ लिखते है ॥ वेयावच्चगराणं संतिगराणं सम्मद्दिट्ठि समाहिगराणं करेमि काउस्सग्ग मित्यादि यावद्वोसिरामि व्याख्या पूर्ववत् नवरं वैयावृत्त्य कराणां प्रवचनार्थे व्यापृतत्वा वानां यक्षाम्रकूष्मांमादीनां शांतिकराणां क्षुद्रोपद्रवेषु सम्यग्दृष्टीनां सामान्येनान्येषां समाधिकराणां स्वपर योस्तेषामेव स्वरूपमेतदेवैषामिति वृद्धसंप्रदायः । ए तेषां संबंधिनं । सप्तम्यर्थे षष्ठी । एतद्विषयं एतानाश्रि त्य करोमि कायोत्सर्गं । कायोत्सर्गविस्तरः पूर्ववत् । स्तुतिश्च नवरमेषां वैयावृत्त्यकराणां तथा तद्भाववृद्धेरि त्युक्तप्रायं तदपरिज्ञानेप्यस्मात्तच्छुनसिद्धाविदमेव व चनं ज्ञापकं नचासिद्धमेतदाभिचारुकादौ तथेक्षणात् सदौचित्य प्रवृत्त्या सर्वत्र प्रवर्तितव्यमित्यैदं पर्यमस्य तदेतत्सकल योगबीजं वंदनादिप्रत्ययमित्यादि न प व्यते अपित्वन्यत्रोच्छ्वसितेनेत्यादि तेषामविरतत्वात् सामान्यप्रवृत्तेरित्थमेवोपकारदर्शनात् वचनप्रामाण्या दिति व्याख्यातं सिद्धेभ्य इत्यादिसूत्रम् ॥

अस्य भावार्थः—जिनशासनकी उन्नति करनेमें व्या

पारवाले है, और क्षुद्रोपद्रवमें सम्यक्दृष्टियोंकों शांतिके करनेवाले और समाधिके करनेवाले ऐसा जो कूष्मांड, आम्रादि यक्ष इनकों आश्रित्य होके कायोत्सर्ग करता हूं, कायोत्सर्ग करके तिन शासनके रक्षक देवतायोंको थुई कहनी. इत्यादिक कहनेसें श्रीहरिभद्रसूरिजीने चौथी थुईका कहना आवश्यकमें कहा है. इसका जो निषेध करे सो जैनशासनमें नही है ऐसा जाननां ॥

तथा श्रीप्रवचनसारोद्धारमें श्रीनेमिचंद्रसूरिजीनें ऐसा पाठ कहा है ॥ पढमं नमोत्थु १, जेअई या सिद्धा २, अरिहंत चेइयाणं ३, ति लोगस्स ४, सवलोए ५, पुक्कर ६, तमतिमिर ७, सिद्धाणं ८ ॥ ८८ ॥ जो देवाणवि ९, उज्जित सेल १०, चत्तारिअठदसदोय ११, वेयावच्चगराणय १२, अहिगारुल्लिंगए पयाइं ॥ ८९ ॥ इस पाठके बारमें अधिकारमें शासन देवताका कायोत्सर्ग और चौथी थुई कहनी कही है ॥ २ ॥ इसकी टीकामें सिद्धसेनाचार्यैं चार थुइसें चैत्यवंदना करनी कही है तथाचतत्पाठः ॥ समयभाषया स्तुतिचतुष्टयं ॥ तिनसे जो चैत्यवंदना सो मध्यम चैत्यवंदना जाननी ॥ ३ ॥

तथा श्रीउत्तराध्ययनकी बृहद्वृत्तिकार श्रीशांति सूरिजीने संघाचार चैत्यवंदना महाभाष्यमें चोथी थुइका पूर्वपक्ष उत्तरपक्ष करकें अछी तरेसें स्थापन करा है. सो भाष्यका पाठ यहां लिखते हैं॥ वेयावच्चगराणं संतिगराणं सम्मद्दिठि स० ॥ अन्नछक० ॥ वेयावच्चं जिणगिहे, रस्कण परिठवणाइ जिणकिच्चं ॥ संतीपडणीयकउ, उवसग्गविनिवारणं भवणे ॥७६॥ सम्मद्दिठी संघो, तस्स समाहमणो डुहाभावो ॥ एएसिकरणसीला, सुरवरसाहम्मिया जे उ ॥ ॥ ७७ ॥ तेसिं समाणढं, काउस्सग्गं करेमि एत्ताहे ॥ अन्नत्थूससियाई, पुव्वत्तागार करणेणं ॥ ७८ ॥ एछउ भणेज्ञ कोई, अविरइगंधाणताणमुस्सग्गो ॥ नहु संगछइ अम्हं, सावयसमणेहिं कीरत्तो ॥ ७९ ॥ गुणहीणवंदणं खलु, न हु जुत्तं सव्वदेसविरयाणं ॥ भणइ गुरु सच्चमिणं, एत्तो चियएछ नहि भणियं ॥ ८० ॥ वंदण पूयण सक्का, रणाइ हेउं करेमि काउस्सग्गं ॥ वछलं पुणजुत्तं, जिणमयजुत्ते तणुगुणेवि ॥ ८१ ॥ ते हुपमत्ता पायं, काउस्सग्गेण वोहिया धणियं ॥ पडिउच्चमंति फुड, पाडिहेर करणे दडछाह ॥ ८२ ॥ सुच्चइ सिरिकंताए, मणोरमाए तहा सुभदाए ॥ अभयाइणं पि कयं, स

न्नेवं सासणसुरेहिं ॥ ७३ ॥ संघस्सगा पायं, वइ्इ सामन्नमिह सुराणंपि ॥ जहसीमंधरमूले, गमणे मा हिलत्ति वायंमि ॥ ७४ ॥ जक्खा एवा सुत्रइ, सीमंधर सामिपायमूलंमि ॥ नयणं देवी एकयं, काउस्सग्गे ण सेसाणं ॥ ७५ ॥ एमाहिं कारणेहिं, साहम्मिय सुरवराण वच्छल्लं ॥ पुव्वपुरिसेहिं कीरइ, न वंदणाहेउ मुस्सुग्गो ॥७६ ॥ पुव्वपुरिसाणमग्गो, वच्चंनो नेय चु कइ सुमग्गा ॥ पाउणइ जावसुद्धि, सुच्चइ मिच्छा विगप्पेहिं ॥ ७७ ॥

इनकी जाषा लिखते है ॥ वैयावृत्त्य कहियें जिनमंदिरकी रक्षा करनी, परिस्थापनादि जिनमतका कार्य करनां, शांति सो जिनजवनमें प्रत्यनीकके करे हूए उपसर्गोंका निवारण करना ॥ ७६ ॥ सम्यक्दृष्टि श्रीसंघ तिसकों दो प्रकारकी समाधिके करनेवाले ऐसा शील कहते स्वजाव है जिन साधर्मी देवतायोंका ॥ ७७ ॥ तिनकूं सन्मान देनेके वास्ते अन्नचउससियाए आदि आगार करनेसें अवमें कायोत्सर्ग करता हूं ॥७८॥ इहांकोइ कहे के अविरति देवतायोंका कायोत्सर्ग करना यह हम श्रावक और साधुयोंकों ठीक संगत नही है ॥ ७९ ॥ क्यों के गुणहीनकूं वंद

ना करनी यह सर्वविरति अरु देशविरतिकूं युक्त नही है. अब इसका उत्तर गुरु कहते हैं. हे नव्य तेरा कहना सत्य है इसवास्तेही इहां नही कहा ॥ ७० ॥ वंदण पूयण सक्कार हेतु वास्तेमें कायोत्सर्ग्ग करता हूं. ऐसा नही कहा; परंतु साधर्मी वत्सल तो जैन मतमें अल्पगुणवालेके साथभी करना इसवास्ते यह जो शासन देवतायोंका कायोत्सर्ग्ग करना है सो बहुमान देणे रूप साधर्मी वत्सल है ॥ ७१ ॥ क्यों के यह शासन देवता प्रायें प्रमादी है, इसवास्ते कायोत्सर्गद्वारा जाग्रत करेहूए शासनकी उन्नति करनेमें उत्साह धारण करते है ॥ ७२ ॥ शास्त्रोमें सुनते है के सिरिकंता, मनोरमा, सुभद्रा अरु अभयकुमारादिकोंको शासनदेवतायोंने साह्य करा ॥ ७३ ॥ श्रीसंघके कायोत्सर्ग करनेसें गोष्ठामाहिल्लके विवादमें शासनदेवता सीमंधरस्वामिके पास गये, वहां जाकर सत्यका निर्णय करा ॥ ७४ ॥ शेष संघके कायोत्सर्ग्ग करनेसें यक्षा साध्वीकों शासन देवी सीमंधरस्वामीके पास लेगइ ॥ ७५ ॥ इत्यादिक कारणो करके चैत्यवंदनामें देवतायोंके साथ साधर्मी वछलरूप कायोत्सर्ग्ग पूर्वाचार्योंने करा है परंतु देवतायोंकों

वंदणा वास्ते नही करा हे ॥ ८६ ॥ इसवास्ते पूर्वाचार्योंके मार्गमें चलनेसें जले मार्गसें कदापि पुरुप ज्रष्ट नही होता है, परंतु पूर्वाचार्योंके चलेहूए मार्गमें चलनेसे अनेक मिथ्या विकल्पोंसे बूटके पुरुप नाव शुद्धिकों प्राप्त होता है इस वास्ते पूर्वाचार्योंका चलाया शासनदेवतायोंका कायोत्सर्ग नित्य चैत्यवंदनामें करना ॥ ८७ ॥ पारिय काउस्सग्गो, परमेठीणं च कयनमोक्कारो ॥ वेयावच्चगराणं, देइथुइ जरकपमुहाणं ॥ ८८ ॥ व्याख्याः—कायोस्सर्ग पारकें, परमेष्ठीकों नमस्कार करकें, वैयावृत्तके करनेवाले शासन देवतायोंकी थुइ कहे ॥ ८८ ॥

ऐसा प्रगट नाष्यका पाठ देखके जो कोइ चोथी थुइका निपेध करे तिस्कों जैनमतकी श्रद्धा रहितके सिवाय अन्य कोनसें शब्द करके वुलाना?

ऐसे ऐसे वडे वडे महान् शास्त्रोंके प्रगट पाठ हे तोजी रत्नविजयजी अरु धनविजयजीकों देखनेमें नही आते हे सो कर्मकी विपमगतिही हेतु हे अन्न दूसरा क्या कहनां ? ॥

तथा चोरासी हजार श्लोक प्रमाण स्याद्वाद रत्नाकर ग्रंथका कर्त्ता सुविहित देवसूरिजीकी करी यति

दिनचर्याका पाठ यहां लिखते हैं॥ नवकारेण जहन्ना, दंमगथुइजुअलमप्रिमा नेआ॥ उक्कोसा विहिपुव्वग्ग, सक्कत्थय पंचनिम्माया॥६५॥ व्याख्याः—नमस्कारेणां जलिबंधेन शिरोनमनादिरूपप्रणाममात्रेण यद्वा न मो अरिहंताणमित्यादिना वा एकेन श्लोकादिरूपेण नमस्कारेणेति जातिनिर्देशाद्बहुभिरपि नमस्कारेण प्रणिपातापरनामतया प्रणिपातदंमकेनैकेन मध्या म ध्यमा दंमकश्च अरिहंत चेइयाणमित्याद्येकस्तुतिश्चैका प्रतीता तदंते एव या दीयते ते एव युगलं यस्याः सा दंमकस्तुति युगला चैत्यवंदना नमस्कार कथना नंतरं शक्रस्तवोप्यादौ जएयते वादंमयोः शक्रस्तवचैत्य स्तवरूपयोर्युगं स्तुत्योश्च युगं यत्र सा दंमस्तुतियु गला इहवैका स्तुतिश्चैत्यवंदन गंमककायोत्सर्गानंतरं श्लोकादिरूपतयाऽन्यान्य जिनचैत्यविषय तयाऽध्रुवा तिमका तदनंतरं चान्या ध्रुवा लोगस्स ज्जोअगरे इत्यादि नामस्तुतिसमुच्चाररूपा वा दंमकाः पंच शक्रस्तवादयः स्तुति युगलं च समय नाषया स्तुतिचतुष्कमुच्यते यत आद्यास्तिस्त्रोऽपि स्तुतयो वंदनादि रूपत्वादेका गएयंते चतुर्थीस्तुतिरनुशास्तिरूपत्वाद्द्वितीयोच्यते त था पंचभिर्दंमकैः स्तुतिचतुष्केण शक्रस्तवपंचकेन

प्रणिधानेन चोत्कृष्टा चैत्यवदनेति गाथार्थः ॥ इस पाठमें चार थुइसें चैत्यवंदना करनी कही है तथा फेर इसी यतिदिनचर्यामें प्रतिक्रमण करनेका विधीमें गाथा जिणवंदणमुणिनमणं, सामाइअ पुव्वकाउस्सगोअ ॥ देवसिअं अइआरं, अणुकम्मसो इथचिंतेजा ॥ १ए ॥ जिनवंदनं करोति चैत्यवदनं कृत्वा देववदनं करोति देववंदनं कृत्वा गुरुवंदनं करोति यथा ज्ञगव न्नहमित्यादि ॥ इस पाठमें प्रतिक्रमणके प्रारंजमें चार थुइसें चैत्यवंदना करनी कही है ॥ तथा फेर इसी दिनचर्यामें ॥ चरणे १ दंसण २ नाणे ३ उज्जोआ डुन्नि १ इक २ इकोअ ३ ॥ सुअ खित्त देवयाए, थुइ अंते पंचमंगलयं ॥ ३७ ॥ व्याख्या तदनु चारित्रविधि शुद्ध्यर्थं कायोत्सर्गः कार्यः तत्रोद्योतकरद्वयं चिंतनीयं १ दंसणनाणेत्यादि ॥ ततो दर्शनशुद्धिनिमित्तमुत्सर्गस्त त्रैकोद्योतकरचिंतनं ॥ २ ॥ तदनु ज्ञानशुद्धिनिमित्तमु त्सर्गस्तत्राप्येकोद्योतकरचिंतनं ॥ ३ ॥ सुअदेवय खित्त देवया एत्ति ॥ तदनु श्रुत समृद्धि निमित्तं श्रुतदेव तायाः कायोत्सर्गमेकनमस्कारचिंतनं च कृत्वा त दीयां स्तुतिं ददाति अन्येन दीयमानां शृणोति वा तत. सर्वविघ्ननिर्दलननिमित्तं क्षेत्र देवतायाः कायो

त्सर्गः कार्यः एक नमस्कारचिंतनं कृत्वा तदीयां स्तुतिं ददाति परेण दीयमानां वा शृणोति स्तुत्यंते पंच मंगलं नमस्कारमभिधायोपविशतीति गाथार्थः ॥३७॥

इस पाठमें श्रुतदेवताका और क्षेत्र देवताका कायोत्सर्ग करनां कहा है, और इन दोनोंकी थुइ कहनी कही है श्रीदेवसूरिजी जिनोनें सिद्धराज जयसिंहकी सन्नामें कुमुदचंद्र दिगंबरकूं जीत्या जिनके आगें साढे तीनकोडी ग्रंथका कर्त्ता श्रीहेमचंद्रसूरि बालक पुत्रकी तरें बैठे थे. और जिन श्रीदेवसूरिजीने चौरासी हजार श्लोकप्रमाण स्याद्वादरत्नाकर ग्रंथ रचा था तिनके शिष्य श्रीरत्नप्रभसूरिजीने रत्नाकरावतारिका लघुवृत्ति रची, जिनके वचनोकों जैनमतमें कोइन्नी विद्वान् अप्रमाणिक नही कही शक्ता है, और यह श्रीदेवसूरिजीके गुरु श्रीमुनिचंद्रसूरि थे तिने जावज्जीव आचाम्ल तप करा है, जिनोकी रची योगबिंदु, धर्मबिंदु, उपदेशपद प्रमुख अनेक ग्रंथोकी टीका है, तिनोने ललितविस्तराकी पंजिकामें चार थुइसें चैत्यवंदना करनी कही है, ऐसे महान्पुरुषोके कथन करेकी जेकर रत्नविजयजी और धनविजयजीकूं प्रतीति न हो तो इन स्तोक मात्र यद्वा तद्वा पठन करे हूए रत्न

विजयजी धनविजयजीके कहनेंकूं कौन बुद्धिमान स त्य मानेंगा. क्योंके रत्नविजय अरु धनविजयजीकूं स मजावने वास्ते जेकर महाविदेह क्षेत्रसें केवलीभग वान् आवे असा तो संभव नही है परंतु पूर्वाचार्यों के वचन ऊपर प्रतीति रखनी चाहियें सो तो इन दोनोकों नही है तव इनका मत सम्यक्दृष्टी पुरुषतो कोइभी नही मानेगा.

तथा श्रीअणहिल्लपुर पाटण नगरें फोफलवाडा भांमागारे प्राचीनाचार्य्यकृत सामाचार्य्योंका पुस्तक है, तिनका पाठ यहां लिखते हें ॥

जिणमुणिवंदण अइआ, रुस्सग्गो पुत्तिवंदणालोए ॥ सुत्तवंदण खामण, वंदण चरणाइ उस्सग्गो ॥ ४ ॥ उज्जोअडुइक्किका, सुअखिउस्सग्ग पुत्ति वंदणए ॥ थुइ तिअ नमुत्थुत्तं, पहि तुस्सग्गु सज्झाउ ॥५॥ पुनरपि अ णहिल्लपुरपट्टननगरे फोफलवाडा भांमागारे कालि काचार्य संतानीय भावदेवसूरि विरचित यतिदि नचर्यायां अथ देवसिक प्रतिक्रमणस्य स्वरूपं निरूप यति ॥ चेइय वंदणभयवं, सूरि उवझाय मुणि खमासम णा ॥ सवसवि सामाइय देवसिय अईयार उस्सग्गो ॥ ३४ ॥ व्याख्या—तत्रादौ चैत्यवदनं अरिहंत चेइ

याणमित्यादि पश्चाच्चत्वारि क्षमाश्रमणानि 'जगवान् सूरि उपाध्याय मुनि' इत्यादिरूपाणि । पुनरपि तत्रैव चैत्यवंदनाः कियंत्य इत्याशंक्याह ॥ पमिकमणे चेइह रे, जोयणसमयंमि तह्य संवरणे ॥ पमिकमण सुय ण पमिबो, हकालियं सत्तह जइणो ॥ ६३ ॥ व्याख्या ॥ साधोः प्रथमा चैत्यवंदना प्रतिक्रमणे रात्रिप्रतिक्रमणे ॥ १ ॥ द्वितीया चैत्यगृहे जिनजवने ॥ २ ॥ तृतीया जोजनसमये आहारवेलायां ॥ ३ ॥ चतुर्थी संवरणे कृतजोजनः साधुः सततं चैत्यवंदनां करोति ॥४॥ तथा पंचमी प्रतिक्रमणे दैवसिकप्रतिक्रमणे ॥ ५ ॥ षष्ठी शयने संस्तारककरणसमये ॥ ६ ॥ सप्तमी प्रतिबोधकाले निद्रापरित्यागे ॥ ७ ॥ एताः सप्त चैत्यवंदनाः यतिनो ज्ञातव्याः, यदाहुः साहूण सत्तवारा, होइ अहोरत्तमज्ञयारंमि ॥ गिहिणो पुणचियवंदण, तियपंचसत्तवावारा ॥ १ ॥ पमिकमउ गिहिणो वि हु, सत्तविहं पंचहा उ इयरस्स ॥ होइ जहन्नेण पुणो, तीसु विसंजासु इय तिविहं ॥२॥ ६३ ॥ अथ तस्याश्चैत्यवंदनाया जघन्यादयः कियंतो जेदा इत्याशंक्याह ॥ नवकारेण जहन्ना, दंमग थुइ जुयल मज्ज्ञिमा नेया ॥ उक्कोस विहिपुव्वग, सक्कबय पंचनिम्माया ॥६४॥ व्या

रुया ॥ नमस्कारः प्रणामस्तेन जघन्या चैत्यवंदना स नमस्कारः पंचधा एकांगः शिरसो नमने, द्व्यंगः करयो र्द्वयोः, त्र्यंगः त्रयाणां नमने करयोः शिरसस्तथा ॥१॥ च पुनः करयोर्जान्वोः नमने चतुरंगकः,शिरसः करयो र्जान्वोः पंचांगः पंचमो मतः ॥ २ ॥ यद्वा श्लोकादिरू पनमस्कारादिभिर्जघन्या ॥ १ ॥ अतो मध्यमा द्वि तीया सा तु स्थापनार्हत्स्तत्रदंमकैस्तुतिरूपेण युगले न नवति अन्ये तु दंमकानां शक्रस्तवादीनां पंचकं त था स्तुतियुगलं समया नापया स्तुतिचतुष्टयं ताभ्यां या वंदना तामाहुः। यद्वा दंडकः शक्रस्तवः स्तुत्योर्युगलं अरिहंतचेइयाणं स्तुतिश्चेति ॥ यत आवश्यकचूर्णौ स्थापनार्हत्स्तवचतुर्विंशतिस्तवश्रुतस्तवाः स्तुतयः प्रो क्ताः एते मध्यम चैत्यवंदनाया नेदा उत्कृष्टा वि धिपूर्वकशक्रस्तवपंचनिर्मिताः । तथा उत्कृष्टा तु श क्रस्तवादिपंचदंडकनिर्मिताः जयवीरायेत्यादिप्रणिधा नान्ता चेत्यवंदना स्यात्, अन्ये तु शक्रस्तवपंचकयु तामाहुः। तत्र वारद्वयं चैत्यवंदनाप्रवेशत्रयं निष्क्रमण द्वयं चेति पंचशक्रस्तवी ॥ ६४ ॥

इसी रीतीसे पाटणनगरके फोफलियावाडाके नं मारमें पूर्वाचार्यकृत समाचारी और यतिदिनचर्य्या

में प्रतिक्रमणकी आदिमें चार थुइसें चैत्यवंदना करनी कही है और श्रुतदेवता, क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करणा कहा है और श्रीन्नावदेवसूरिजीने यति दिनचर्य्यामें प्रतिक्रमणमें चार थुइकी चैत्यवंदना करनी कही है और श्रुतदेवता अरु क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग और थुइ कहनी कही है तथा चैत्यवंदनाके मध्यमोत्कृष्ट न्नेदमेंन्नी चार थुइसें चैत्यवंदना करनी कही है ॥

तथा पंचवस्तु ग्रंथमें इस मुजब पाठ है सो लिखते है ॥ थुइ मंगलंमि गुरुणा, उच्चरिए सेसे १ सगा थुई विंति ॥ चिठंति तउथेवं, कालं गुरु पाय मूलम्मि ॥ए०॥ व्याख्या ॥ स्तुतिमंगले गुरुणा आचार्येण उच्चारिते सति ततः शेषाः साधवः स्तुतीर्ब्रुवते ददती त्यर्थः। तिष्ठति ततः प्रतिक्रांतानंतरं स्तोकं कालं केत्याह गुरुपादमूले आचार्यांतिके इति गाथार्थः। प्रयोजनमाह । पम्हे ठमे रसायणाउ उफेडिज्ज हवइ एवं ॥ आयरणासु अ देवय, माइणं होइ उस्सग्गो ॥ए१॥ तत्र विस्मृतं स्मरणं न्नवति विनयश्च फटितो नामतीतो न्नवत्येव उपकार्यासेवनेन एतावत्प्रतिक्रमणं आचरणात् श्रुतदेवतादीनां न्नवति कायोत्सर्गः। अत्र आदि

शब्दात् क्षेत्रभवनदेवतापरिग्रहः। इति गाथार्थः॥

इसि प्रकारें श्रीहरिभद्रसूरिजीने पंचवस्तु शास्त्रमें आचरणासें श्रुतदेवता और क्षेत्र देवताका कायोत्सर्ग करना कहा है, तो यह श्रुतदेवता अरु क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्गकरण रूप आचरणा पूर्वधारियों के समयमेंभी चलती थी तिस्का स्वरूप विचारामृत संग्रह ग्रंथकी साक्षीसें उपर लिख आये हैं. तो पूर्वधारियोंकी आचरणाका निषेध करना यह महा अनर्थका मूल है, निषेध करनेवाले रत्नविजयादि ऐसे नही सोचते होवेगे के, हम तुछबुद्धिवाले होकर पूर्वधारियोंकी आचरणाका निषेध करके कौनसी गतिमें जावेगे !!

तथा श्रीवृंदारुवृत्तिका पाठ लिखते है एवमेतत्प वित्वोपचितपुण्यसंभार उचितेष्वौचित्यप्रवृत्त्यर्थमिद माह वेयावच्चगराणमित्यादि। वैयावृत्त्यकराणां प्रव चनार्थं व्यापृतभावानां गोमुखयक्षादीनां शांतिकराणां सर्वलोकस्य सम्यग्दृष्टिविपये समाधिकराणां एपां संबंधिना पष्ठ्या सप्तम्यर्थत्वादेतद्विपयं वा आश्रित्य करोमि॥ कायोत्सर्गं अत्र वंदणवत्तियाए इत्यादि न पठ्यते तेषामविरतत्वात् अन्यत्रोछ्वसितेनेत्यादि पूर्वव

त् । ततः एषां स्तुतिं नणित्वा प्रागुक्तवन्नक्रस्तवं च ॥ प्रतिक्रमणविधिश्च योगशास्त्रवृत्त्यंतर्गताच्यः चिरंतनाचार्यप्रणीताच्यो गाथाच्योऽवसेयः । पंच विहायार विसुद्धिहेजमिह साहु सावगो वावि ॥ पडिक्कमणं सह गुरुणा, गुरुविरहे कुणइ इक्को वि ॥ १ ॥ वंदित्तु चेइयाइं, दाउं चजराइए खमासमणे ॥ नूमिनिहित्र सिरो सयलाइआर मिह्नोक्कडं देई ॥ २ ॥ सामाइय पुव्वमिह्ना,मि गइउं काउसग्गमिच्चाइ ॥ सुत्तं नणिअ परंविअ, नूअकुप्पर धरि अ पहिरणउं ॥ ३ ॥ घोडगमाई दोसेहिं, विरहियंतो करेइ उस्सग्गं ॥ नाहि अहो जाणूढं, चउरंगुलठइअ कडिपट्टो ॥ ४ ॥ तन्नयधरेई हिअए, जहक्कमं दिणकए अईआरे ॥ पारेत्तु णमोक्कारे,ण पडइ चउवीसथयं दंमं ॥ ५ ॥ संमासगे पमज्जिअ, उववसिअ अलगाविअयबाहुजुउं ॥ मुहणंतगं च कायं, च पेहए पंचवीसइहा ॥ ६ ॥ उठिअ ठिउसविणयं, विहिणा गुरुणो करेइ किइकम्मं ॥ बत्तीस दोसरहिअं, पणवीसावस्सगविसुद्धं ॥७॥ अह संमम वणयंगो, करजुअ विहिधरिअ पुत्तिरयहरणो ॥ परिचिंतईअइआर, जहक्कम्मं गुरुपुरोविअडे ॥ ८ ॥ अहउव विसित्तु सुत्तं,सामाइय माइअं पढिअ पयउ ॥

अडुठिम्मि इच्चाई, पढई डुट्ठविहिं विहिणा ॥ ए ॥ दाऊण वंदणं तो, पणगाई सुजइ सुखा मए तिसिु॥ किइ कम्मं करिअ आ, यरिअमाईगाहातिगं पढए ॥१०॥ इअ सामाइअ उस्स,ग्ग सुत्तमुच्चरिअ काउस्सग्गठिउ ॥ चिंतइ उज्जोअडुगं, चरित्त अइआरे सुद्धिकए ॥ ११ ॥ विहिणा पारिअ संम,त्त सुद्धिहेउं च पढइ उज्जोअं ॥ तह सवलोअ अरहं, त चेइआराहणुस्सग्गं ॥ १२ ॥ काउं उज्जोअगरं, चिंतिअपारेइ सुद्ध सम्मत्तो ॥ पुरकर वरदीवडुं, कट्टइ सुहण निमित्तं ॥ १३ ॥ पुणपणवी स्सुस्सासं, उस्सग्गं कुणइ पारए विहिणा ॥ तो स यल कुशल किरिआ, फलाणसिद्धाण पढइ थयं ॥१४॥ अहसुअ समिद्धि हेउ, सुअदेवीए करेइ उस्सग्गं ॥ चिंतेइ नमुक्कारं,सुणइ व देइ व तीइ थुई॥१५॥एवं खेत्त सुरीए, उसग्गं कुणइ सुणइ देइ थुइ ॥ पडिकण पंच मंगल, मुवविसई पमज्जसंमासे ॥ १६ ॥ पुव्वविहिणे वपेहिअ, पुत्तिं दाऊण वंदण गुरुणो ॥ इच्छामो अ णुसठिं, तिन्नणिअजाणूहिं तो गाई ॥ १७ ॥ गुरुथुइ गहणे थुइतिसि वद्धमाण रकरस्सरा पढई ॥ सक्कछ वयवं पढि,अ कुणइ पच्चित्तछ स्सगं ॥१८॥

भाषा यह वृंदारुवृत्ति श्रावकके आवश्यककी टी

का है तिसके अंतरगत चैत्यवंदनाविधि है. तिसमें चार थुइसें चैत्यवंदना करनी लिखी है. तिसमें चोथी थुइके वास्ते ऐसा पूर्वोक्त पाठ लिखा है. तिसका अर्थ कहते है. ऐसें कहके पुण्यके समूह करके उपचित होआ हूआ उचितों विषे उचित प्रवृत्तिके अर्थं ऐसें कहे "वेयावच्च" वैयावच्चके करणहार, जिनशासनकों साहाय्यकारी गोमुख यक्षादिक सर्वलोककों शांति करनेवाले, सम्यक्दृष्टियोंकों समाधि करणहारे, इन संबंधि इनकों आश्रित्य होके कायोत्सर्ग करता हूं. इहां वंदणवत्तिआए इत्यादि पाठ न कहना, तिनके अविरत होनेसें अन्यत्रोछ्वसितेनेत्यादि पूर्ववत् कहना ॥

तथा कलिकाल सर्वज्ञ बिरुद धारक साढेतीन कोटी ग्रंथका कर्त्ता ऐसे श्रीहेमचंद्रसूरिजीने योगशास्त्र में चिरंतन पूर्वाचार्योंकी रचित गाथा करके प्रतिक्रमणेका विधि लिखा है. तिसमें दैवसिकप्रतिक्रमणेकी आदिमें चैत्यवंदना चार थुइसें करनी कही है, तथा श्रुतदेवता क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करना और तिनकी थुइ कहनी कही है इसीतरें श्राद्धविधिमें पाठ लिखा है ॥

तथा वृंदारुवृत्ति पाठः ॥ तत्र दैवसिकादिप्रतिक्रम णविधिरमून्यो गाथान्योवसेयः, तत्रेदं दैवसिकं। जि ण मुणिवंदण अइआ, रुस्सगो पुत्ति वंदणिआलोए ॥ सुत्तं वंदण खामण, वंदण तिन्नेव उस्सग्गो ॥ १ ॥ चरणे दंसणनाणे, उज्जोआउन्निइकइकोअ ॥ सुअदेव याउ डुस्सग्गा, पुत्ती वंदण थुई थुत्तं ॥ २ ॥ इत्यादि.

इहां वृंदारुवृत्तिमें प्रतिक्रमणेकी आदिमें चैत्यवंद ना और श्रुतदेवताका क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग क रणा कहा है अरु थुइभी कहनी.

तथा चैत्यवंदन लघु नाष्ये ॥ सुदिठिसुर समरणा चरिमे ॥ ४५ ॥ अर्थः—चैत्यवंदनाके बारमें अधिका रमें सम्यक्दृष्टी देवताका कायोत्सर्ग करना और थुइ कहनी.

तथा प्रतिक्रमणागर्ञित हेतु ग्रंथमें कह्या है सो पाठ लिखतें हैं ॥ अथ चावश्यकारंन्ने साधु· श्राव कश्चादौ श्रीदेवगुरुवंदनं विधत्ते, सर्वमप्यनुष्ठानं श्रीदे वगुरुवंदनबहुमानादिन्नक्तिपूर्वकं सफलं नवतीति आह च ॥ विणयाहीआविज्जा, दिंति फलं इह परे अलोगंमि ॥ न फलंति विणयहीणा,सस्साणिवतो अ हीणाणि ॥ ए ॥ नत्तीइ जिणवराणं, खिज्जंति पुव्वसं

चिन्ना कम्मा ॥ आयरिय नमुक्कारेण, विज्जा मंताय सिज्झंति ॥ १० ॥ इति हेतोर्द्वादशभिरधिकारैश्चैत्यवंदनाभाष्ये ॥ पढमहिगारे वंदे,भावजिणे वीअएउदव्वजिणे ॥ २ ॥ इगचेइअ ठवणजिणे, तइअ चउत्थंमि नामजिणे ४ ॥ १ तिहुअणठवणजिणे पुण, पंचमए विहरमाणजिणछठे ६ ॥ सत्तमए सुअनाणं, ७ अठमए सव्वसिद्ध थुइ ॥ २ ॥ तित्थाहिव वीर थुई, नवमे ए दशमे अ उज्जयंत थुइ १० अठावयाइइगदसि ११ सुदिठि सुरसमरणाचरिमे १२ ॥३॥ नमु १ जेअइ २ अरिहं, ३ लोग ४ सव्व ५ पुरक ६ तम ७ सिद्ध ८ जोदेवा ए॥ उर्जि १० चत्ता ११ वेया, वच्चग १२ अहिगार पढमपया ॥४॥ इति गाथोक्तैर्देववंदनं विधाय चतुरादिक्षमाश्रमणैः श्रीगुरुन् वंदते ॥

अह सुअ समिद्धिहेउं,सुअदेवीए करेइ उस्सग्गं ॥ चिंतेइ नमुक्कारं, सुणइ व देइ व तीइ थुई ॥ ५२ ॥ एवं खित्तसुरीए, उस्सग्गं कुणइ सुणइ देइ थुइं ॥ ॥ पढिउं च पंचमंगल, मुवविसइ पमज्जसंडासं ॥५३॥

अर्थः—आवश्यकके आरंभमें बारां अधिकार पर्यंत चैत्यवंदना करनी अर्थात् चार थुइसें चैत्यवंदना करनी कही है, तथा यही ग्रंथमें श्रुतदेवता और

क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग और तिनकी दो थुइ कहनी ऐसा कथन उपर के पाठमें है.

तथा संवत् १९४३ के फाल्गुन चातुर्मासेमें रत्न विजयजी, राजधनपुर नगरमें थे तिस समयमें एक श्रावकके घरमें ताडपत्रोंपर लिखी हुइ संघाचार नामा लघुभाष्यकी वृत्तिथी तिसकूं रत्नविजयजीनें वांची और कहने लगेके देखो इस वृत्तिमेंभी तीन थुइ है इस्सें हमारा मत सिद्ध है. तब तिनके पास जानेवाले श्रावकोंने एक चिठी लिखके तिस पुस्तकके पत्रेपर चेपदीनी तिस चिठीकी नकल हम यहां लिखतें हैं ॥

संघाचार भाष्यना पाना २९५ मां त्रण थोयो कही छे ते टीकाकारें कही छे सिद्धाणंबुद्धाणंनी कही छे ॥ तारेइ नरव नारिंवा ॥ वेयावच्चगराणं कहेवु ते क्षुद्रोपद्रव उडाववाने वास्ते पानुं (३०४)

इस चिठीके लेखसें रत्नविजयजीका कहना सब मिथ्या है ऐसा सिद्ध होता है. क्योंके सुननेवाला विनविचार वाले होने वो कुछ संस्कृत प्राकृत भाषा तो पढे नही है. तिनकों जो कोइ जिसतरे बहका देवे तिसतरे वो बहक जाते है. अब देखोके जिस

पाठके वास्ते चिठ्ठी चेपी है. तिस पाठसेंही रत्नविजयजीका मत स्वकपोलकल्पित मिथ्या सिद्ध हो जाता है. सो पाठ भव्य जीवोंके जानने वास्ते हम यहां लिखते हैं ॥ उक्तंच संघाचार भाष्ये चरमे हादशे अधिकारे। वेयावच्चगराणमित्यादि कायोत्सर्गकरणं तदीयस्तुतिदानपर्यंते क्रियते इति शेषः। औचित्य प्रवृत्तिरूपत्वाद्धर्मस्य अवस्थानुरूपव्यापाराभावे गुणाभावापत्तेः। यतः औचित्यमेकमेकत्र गुणानां कोटिरेकतः ॥ विषायते गुणग्राम औचित्ये परिवर्जितः ॥ अपिच अनौचित्यप्रवृत्तो महानपि मथुराक्षपकवत् कुबेरदत्ताया भवत्यल्पानामपि प्रत्युच्चारणादिभाजनम् ॥ आह च ॥ आरंकाद्भूपतिं यावदौचित्यं न विदंति ये ॥ स्पर्द्धयंतः प्रभुत्वाय खेलनं ते सुमेधसाम् ॥ ॥ १ ॥ इदमत्र तात्पर्यं। सर्वदापि स्वपरावस्थानुरूपया चेष्टया सर्वत्र प्रवर्तितव्यमिति ॥ उक्तं च ॥ सदौचित्यप्रवृत्त्या सर्वत्र प्रवर्तितव्यमित्यैदंपर्यमस्येति ॥ मथुराक्षपककुबेरदत्तादेव्योः संविधानकं त्विदं ॥ इह कुसुमपुरे नयरे, दढधम्मो दढरहो निवो आसी ॥ उचियपडिवत्तिवल्ली, पल्लवणे सजलजलवाहो ॥ १ ॥ सर एक याविअन्न, मंमलं गयणमंमले जाव ॥ परिस

प्पेरं समंता, पासायतलठियो नियइ ॥ २ ॥ तास
हसा तपरु पव,णपडिह्यं दहु चिंतइ विरत्तो ॥ खण
दिठ्ठनठ्ठरूवा, अहह कहं सब्बनावठिई ॥ ३ ॥ तथा
हि–संपच्चंपकपुप्परागति रतिर्मत्तांगनापांगति, स्वाम्यं
पद्मदलाग्रवारिकणति प्रेमा तडिद्दंडति ॥ लावण्यं
करिकर्णतालति वपुः कल्पान्तवातभ्रम, दीपच्छायति
यौवनं गिरिणदीवेगत्यहो देहिनाम् ॥ ४ ॥ इय चिं
तिउं सविणयं, विणयंधर सुगुरुपास गहियवक ॥
गीयत्थो विहरंतो, पत्तो सकयावि महुरपुरिं ॥ ५ ॥
तत्थ ठिक चउमासं,कुबेरदत्ताइ देवयाइ गिहे ॥ छुत्तव
तवचरणरउं, निरउ आयावणविहाणे ॥ ६ ॥ विग
हा निद्दाइपमा, य वज्जिउं उत्तुउं सुहप्पाणो ॥ वासी
चंदणकप्पो, समोयमाणा वमाणोय ॥ ७ ॥ तं दहु
हठ्ठतुठ्ठा, कुबेरदत्ताह जो मुणिवरिंठ ॥ पसियमहकहसु
किंते, करेमि मणइछिय कयं ॥८॥ जणइ मुणीउचिय
न्नू, जावन्न दवखित्तकालन्नू ॥ मंवदाव सुन्नदे, सुमेरुसि
हरिठिए देवे ॥ ए ॥ देवी जणेइ एवं, करेमि करसंपुडेण
हिऊण ॥ नेउं मुमेरु सिहरे, जदुवंधावे सिनं देवे ॥
॥ १० ॥ आह मुणिजाइ छुविहं, थीसंघट्ठो वयाइ
यारकरो ॥ तामस्स वम्मसीजे, अलं मच्च मणो

रहेण मिणा ॥ ११ ॥ तो सविसेसंतुठा, कु
वेरदत्ता तहिं विणिम्मेइ ॥ गयण यलमणु लि
हंतं, सुकिंकिणी जाल कयसोहं ॥१२॥ जिणवर सुपा
सअप्पडिम, पडिम समलंकियं अइ विसालं ॥ उत्ता
ण नयण प्पण,पिच्छणिज्ज तिय मेहला कलियं ॥१३॥
वरसव्वरयण मइयं, सुमेरु नामं कियं महाथूनं ॥ तं द
ठुं विह्यिय मणो, समुणि वंदइ तहिं देवो ॥ १४ ॥ तं
थूलरयण मच्छुय, लूयं दठूण मिच्छदिठीवि ॥ तइयाह
रि सुकरिसा, जायाजिण सासणे लत्ता ॥ १५ ॥ इयंतं
मि थूलरयणे, सुपास जिण काल संलवंमि सया ॥
सुर किज्जमाण पिरकण,खणंमि सुबहू गउ कालो ॥१६॥
इछंतरंमि खवगो, सुदंसणो नाम उग्गतवचरणो ॥
विहरइ वसुहावलए, महुराखव गुत्ति सुपसिद्धो ॥१७॥
लवणे कुबेरदत्ता, इसंठिउ सोकयाइ चउमासे ॥ आया
वणाइ निरउ, डुक्करतवचरण किसियंगो ॥ १८ ॥ त
त्तिव्वतवाकंपियहियया सा देवया लणइ सुमुणे ॥
मह कह सुकिंपि कज्जं,जेणं तं लदु पसाहेमि ॥ १९ ॥
मुनिराह अनूचियनू, किं मह कज्जं असंजईइ तप ॥
साहमए तुह कज्जं, असंजईइविधुवंहोही ॥ २० ॥ इय
लणिउ अणुचियवय,ण सवण उप्पन्नमन्नुविवसमणा

॥ देवीगया सठाणं, मुणिवि अन्नव विहरिव्वा ॥२१॥ अह तत्र निवसहाए,थूभकएसेय भिरकु भिरकूणं ॥जा ब महविवाउं, वम्मासेजाव नयछिन्नो ॥ २२ ॥ संघे ण तउ नणियं, कोछितु मलं विवाय मेयंतु ॥ हुं हुं महुरा खमगो, तछइ मोक्ठत्ति आहूउ ॥२३॥ तेण त वेणा कंपिय, हियया पत्ता कुवेरदत्ताह ॥ किंते करें मि कर्हं, स नणइ तं कच मादइमा ॥ २४ ॥ किंतुह असंज इए, विइ गिह्मएनणु पवयण जायं ॥ तो अ णुतावा साहू, से मिछा डुक्कडं देइ ॥ २५ ॥ सानण इ खवग पुंगव, सेय पमागाइ दंसणा थूभे ॥ गोसे त हा जइस्सं,जह जिणइ इमे नियय संघो ॥ २६ ॥ इ यदेवयाइ वयणं, सोउं खवगो कहेइ संघस्स ॥ संघो वि गंतु साहइ, एव रन्नो जह नरिंद ॥ २७ ॥ जइअ ह्म एस थूभो, तोइह होही पनाए सियपडागा ॥ अह भिरकूणं तत्तो, रन्नाइय सुणिय नरनाहो ॥२८॥ तंथूभंरस्कावइ, समंतउ नियनरेहिं अहदेवी ॥ पवय णभत्तापयडइ, थूभे गोसेसियपडागं ॥ २९ ॥ तं पि छविम्अठरिय, अणछ हरिसोनिवो पुरी लोउ ॥ उक्कि ठ कलयररवं, कुणमाणो नणइ वयणमिणं ॥ ३० ॥ जयउ जए महकालं, एसो जिणनाहदेसिउ धम्मो ॥

जयउ इमो जिणसंघो, जयंतु जिणसासणे जत्ता ॥ ॥ ३१ ॥ दछु सुदिठिसुरसुम, र णेणउ गप्पणं पवय णस्स ॥ चिरथरउस्ववगोपा जिउणचरणगउ सुगइं ॥ ३२ ॥ मथुराक्षपकचरित्रं, श्रुत्वेत्वौचित्यवचो ज व्याः ॥ प्रवचनसमुन्नतिकरीं, सुद्दष्टिसुरसं स्मृतिं कुरु त ॥ ३३ ॥ इति मथुराक्षपककथा ॥

अथ येऽधिकारा यत्प्रमाणेन जण्यंते ॥ तदसंमो हनार्थं प्रकटयन्नाह॥ नव अहिगारा इह ललिय विडरा वित्तिमाइअणुसारा ॥ तिन्निसुय परंपरया वीउदसमोइ गारसमो ॥ ३५ ॥ इह द्वादशस्वधिकारेषु मध्ये नव अधिकाराः प्रथमतृतीयचतुर्थपंचमषष्ठसप्तमाष्टनवम द्वादशस्वरूपा या ललितविस्तराख्या चैत्यवंदना मूल वृत्तिस्तस्या अनुसारेण तत्र व्याख्यातास्तत्र प्रामाण्ये न जण्यंते इति शेषः। तथाच तत्रोक्तं एतास्तिस्रः स्तु तयो नियमेनोच्यंते केचित्त्वन्या अपि पठंति नच त त्र नियम इति न तद्व्याख्यानक्रिया एवमेतत् पठि त्वा उपचित पुण्यसंजारा उचितेषूपयोगफलमेतदिति ज्ञापनार्थं पठंति वेयावच्चगराणमित्यादि ॥ अत्र च एता इति सिद्धाणं बु० १ जो देवाणवि २ एक्कोवीति ॥ ३ ॥ अन्या अपीति उर्जितसेल १ चत्तारिअठ २

तथा जेय अईयेत्यादि २ अतएवात्र बहुवचनं संज्ञा व्यते ॥ अन्यथा द्विवचनं दद्यात् पठंतीति सेसाजहि ह्नाए इत्यावश्यकचूर्णिवचनादित्यर्थः नच तत्र नियम इति न तद्व्याख्यानं क्रियते इति तु नणंतः श्रीहरिन्न द्रसूरिपादा एवं ज्ञापयंति यदत्र यदृच्छया नण्यते त न्न व्याख्यायते यत्पुनर्नियमतो नणनीयं तद्व्याख्या यते तद्व्याख्याने व्याख्यातं च वेयावच्चगराणमित्यादि सूत्रं ॥ तथा चोक्तं ॥ एवमेतत्पठित्वेत्यादि यावत् प ठंति ॥ वेयावच्चगराणमित्यादि ॥ ततश्च स्थितमेतत् यडुत वेयावच्चगराणमित्यप्यधिकारोवश्यं नणनीय एव अन्यथा व्याख्यानासंन्नवात् ॥ यदि पुनरेषोपि वैयावृत्यकराधिकार उद्यंताद्यधिकारवत् कैश्चित् न णनीयतया यादृच्छिकः स्यात् तदा उचित सेलेत्यादि गाथाद्वयमपि न व्याख्यायेत व्याख्यातश्च नियमन्न णनीय सिद्धादिगाथान्निः सहायमनुविद्धसंबंधेनेत्य तोऽत्रुटितसंबंधायातत्वात्सिद्धाधिकारवदनुस्यूत एव नणनीयः अथाप्रमाणं तत्र व्याख्यातं सूत्रमिति चेत् एवं तर्हि हंत सकलचैत्यवंदना क्रमान्नावप्रसंगः सूत्रे चास्या एवं क्रमस्यादर्शितत्वात् तदन्यत्र तया व्याख्या नान्नावात् व्याख्यानेप्येतदनुसारित्वात्तस्य पश्चात्काल

प्रनवत्वान्नव्यकरणस्य न सुंदरस्यापि नवनिबंधनत्वात्त त्रोक्तस्योपदेशायाततया स्वछंदकल्पिताजावादिति प रिजावनीयम् बह्वत्र माध्यस्थ्यमनसा विमर्शनीयं सूक्ष्मया धिया विचिंतनीयं सिद्धांतरहस्यं पर्युपासनीयं श्रुतवृद्धानां प्रवर्तितव्यं असदाग्रहविरहेण यतितव्यं निजशक्त्यनुकूल्यमिति एवं च द्वितीयदशमैकादशव र्जिताः शेषाः प्रथमाद्या द्वादशपर्यंता नव अधिकारा उपदेशायातजनितविस्तराव्याख्यातस्तत्र सिद्धा इति सिद्धं । आदिशब्दात् पाक्षिकसूत्रचूर्ण्यादिग्रहः । तत्र सूत्रं देवसस्कियत्ति अत्र चूर्णिः । विरइ पडिवत्तिकाले चिइवंदणा इणो वयारेण ॥ अवस्सं अहा संनिहया देवया संनिहाणं सिजवइ अउदेवसिस्किजणयंति ॥

अयमत्र जावार्थः तावजणधरैर्दार्ढ्यार्थं पंचसाक्षिकं धर्मानुष्ठानं प्रतिपादितं लोकेपि व्यवहारदार्ढ्यस्य तथा दर्शनात् तत्र देवा अपि साक्षिण उक्तास्ते च चैत्यवंदनाद्युपचारेणासनीजूताः साक्षितां प्रतिपद्यंते चैत्यवंदनामध्ये च तेषामुपचारः कायोत्सर्गस्तुतिदानादिना क्रियते अन्यस्य तत्रासंजवात् अश्रुतत्वाच्च त तश्चैवमायातं तथा चैत्यवंदनामध्ये देवकायोत्सर्गादि करणीयमेव अन्यथा तत्रान्यत्तडुपचाराजावे देवसा

क्तिकत्वात्सिद्धेः चूर्णिकारेण तथैव व्याख्यातत्वान्निश्ची यते तच्च देवसिकप्रतिक्रमणसूत्रप्रामाण्यात् ॥

इस उपर लिखे हूए पाठकी नापा लिखते हे ॥ चरम कहेते वारमे अधिकारमें वेयावच्चगराणमित्यादि कायोत्सर्गका करनां तिसकी स्तुति पर्यंतमें देनी क्योंके यह सम्यक्दृष्टि देवताके साथ उचित प्रवृत्तिरूप हो नेसें धर्मको अवस्थानुरूप व्यापारके अनावसें गुण अनावकी आपत्ति होनेसें एक पासें औचित्य स्थापी यें ओर एक पासें गुणांकी कोटी स्थापीयें औचित्यकें विना सर्व गुण विषकी तरें आचरण करेंगे ॥ १ ॥

अनौचित्यप्रवृत्त होनेसें यद्यपि महान्पुरुष मथुरा क्षपक था तोनि कुवेरदत्ता सम्यक्दृष्टिणी देवीके सा थ अनौचित्यप्रवृत्ति करनेसें मिछामिछुकड देना पडा ॥ आह च ॥ रंकसें ले कर राजा पर्यंत जे पुरुष औचि त्यप्रवृत्ति करनी नही जानते है, अरु वे पुरुष प्रनु ता ठकुराइके तांइ चाहते हे, पर ते पुरुष बुद्धिमानो के खिलोने हे ॥ १ ॥ इहां यह तात्पर्य हे के सदाका ल अपनी परकी अवस्था अनुरूप उचित प्रवृत्ति करकें प्रवृत्त होना चाहियें सदा औचित्य प्रवृत्ति करकें सर्वत्र प्रवर्त्तना चाहियें यह तात्पर्यार्थ हे ॥ इस क

थन उपर मथुरा कूपक और कुबेरदत्ता देवीका दृ
ष्टांत कहा है ॥ तिस दृष्टांतका जावार्थ यह हैके
प्रथम मुनिके कहनेसें संतुष्ट होकें कुबेरदत्ता देवीनें
श्रीसुपार्श्वनाथ स्वामीके वखतमें मथुरा नगरीमें श्री
सुपार्श्वनाथ अरिहंतका मेरु पर्वत सदृश स्तुन्न प्रति
मा सहित रचा. कितनेक काल पीछें अन्यदर्शनी
और जैनीयोंका यह स्तुन्न बाबत विवाद हूआ,
वहां अन्यदर्शनी अपने मतका स्तुन्न कहने लगे,
और जैनीनी अपने मतका स्तुन्न है ऐसा कहने
लगे. जब राजासेंनी यह विवाद न मिटा तब श्रीसं
घने तिस कालमें मथुरा कूपक नामा साधूकूं अति
शयवान् जानके बुलाया. तिस मथुराकूपक उपर पहि
लां कुबेरदत्ता देवीनें संतुष्ट होके कहा था के हे मुनि
में क्या तेरे मन इछित कार्यकूं संपादन करुं ? तब
मथुराकूपक मुनिने कहाके मैं तपके प्रजावसें सर्व कर
सक्ता हूं तो तेरे असंयताके साहाय्य वांछनेसें मुजे
क्या प्रयोजन है ? तब कुबेरदत्ता रोष करके जती रही
सो मथुराकूपक फिरके आया तिसने तपसें देवीकों
आराध्या. तब देवी प्रगट होके कहने लगी. में तेरा
क्या कार्य करुं ? तब मथुराकूपक कहने लगा. श्री

संघकी जीत कर. तव कुवेरदत्ताजी कहने लगी के तेरा मेरे असंयतिसें क्या प्रयोजन अव उत्पन्न हुवा के जिस्सें तें मुजकों याद करा ? तदपीछें साधुने पश्चात्ताप करा. और कुवेरदत्ता देवीसें मिछामि डुक्कडं दीना. तव देवीनें कहा में कलकूं स्तुनके उपर श्वेत पताका करुंगी, और संघ तथा राजाकों कहे जेकरी श्वदिने प्रनातकों श्वेत वर्णकी पताका होवे, तो हमारा थुन जानना अरु जो अन्य वर्णकी पताका होवे, तो हमारा नही जानना. यह वात सुन कर राजाने अपने नोकरोंसें पहरा दिलवाया परंतु प्रवचन नक्त देवीनें प्रनातमें श्वेतपताका कर दीनी तिसकूं देखकें राजा अरु प्रजाने उत्कृष्ट कल कल शब्द करकें कहा के वहुत कालतक यह जैनशासन जयवंत रहीयो, अरु संघ जयवत रहो, जिनशासनके नक्त जयवत रहो, इसीतरे सम्यक्दृष्टि देवताका स्मरण करनेमें प्रवचनकी प्रनावना देखकें वहुत लोकों जैनधर्मी हो गये, मुनिनी सुगतिमें गया ॥ इति मथुराकपकवृत्तांत. ॥ इस वास्ते सम्यक्दृष्टि देवताका अवश्यमेव कायोत्सर्ग करके थुइ कहनी चाहियें.

अथ जे अधिकार जिस प्रमाणसें कहे है. ति

नके असंमोहार्थें लघुनाष्यकार प्रगट करते हैं ॥ गाथा ॥ नव अहिगारा इह ललि, यविह्नरा वित्तिमाइ अणुसारा ॥ तिन्नि सुयपरंपरया, बीउ दसमो इगार समो ॥ ३५ ॥

इहां बारा अधिकारमेंसें पहिला, तीसरा, चौथा, पांचमा, ठठा, सातवा, आठहवा, नवमा अरु बारहवा, यह नव अधिकार ललितविस्तरा नामा चैत्यवंदनाकी जो मूलवृत्ति है तिसके अनुसारसें कथन करे हैं ॥ तथाच तत्रोक्तं ॥ यह तीन थुइयां सिद्धाणं इत्यादि जो है सो निश्चयसें कहनी चाहियें, और कितनेक आचार्य अन्य थुइयांजी इनके पीछें कहते है. परं तहां नियम नही है के अवश्य कहनी इस वास्ते मैंने तिनका व्याख्यान नही करा है. ऐसें यह "सिद्धाणं बुद्धाणं" पाठ पढके उपचित पुण्य समूहसें नरा हूआ उचितो विषे उपयोग करनां यह फल है. इसके जनावने वास्ते यह पाठ पढे.

वेयावच्चगराणं इत्यादि ॥ इहां वली 'एता' ऐसे शब्दसें १ सिद्धाणंबुद्धाणं, २ जो देवाणविदेवो, ३ इक्कोवि नमुक्कारो, अन्याअपि इस शब्दसें १ उर्जतसेल०" ॥ २ चत्तारी अठ० ॥ तथा ३ जेय अईया

सिद्धा इत्यादि इसी वास्ते इहां बहुवचन दीया है., नही तो द्विवचन देते पठंति ऐसी बहुवचन रूप क्रिया है. " सेसाजहिछा " शेष थुइयां जैसी इछा होवे तैसें कहे, यह आवश्यक चूर्णिके वचनका प्रमाण है. नच तत्र नियम इति ॥ नतद्व्याख्यानं क्रियते इति ॥ ऐसा कहन कहते हूए. श्रीहरिभद्रसूरिपूज्य ऐसें ज्ञापन करते है के जो पाठ यहां चैत्यवंदनामें अपनी यथेछासें कहते है, तिसका व्याख्यान हम नही करते है, जो पाठ चैत्यवंदनामें निश्चयसें कहने योग्य है, तिसका व्याख्यान करते है. तिसके व्याख्यान करनेसें वेयावच्चगराणं इत्यादि सूत्रकाभी व्याख्यान करा ॥

तथा चोक्तं ॥ ऐसें यह पढके यावत् वेयावच्चगराणं इत्यादि पढे ॥ इस कहनेसें वेयावच्चगराणं इत्यादि अवश्य पढने योग्यही है, यह सिद्ध हूआ. जेकर वेयावच्चगराणं यह पाठ अवश्य पढने योग्य न होता तो श्रीहरिभद्रसूरिजी अपनी प्रतिज्ञाप्रमाणे इस पाठका व्याख्यान न करते. जेकर यह " वेयावच्चगराणं " पाठाधिकारकों अचिंतादि अधिकारकी तरें केइ आचार्य पढते. केइ न पढते, तब तो याद

च्छिक होता. तब तो अरिहंतादि गाथाकी तरें इसका भी व्याख्यान श्रीहरिभद्रसूरिजी न करते, परंतु उनोने व्याख्यान करा है, इस वास्ते सिद्धादि गाथायोंके साथ वेयावच्चगराणं इत्यादि यह पाठ अनुविद्ध अर्थात् प्रोता हूआ है. बिचमें टूटा हूआ नही है. इसवास्ते सिद्धाणं इत्यादि गाथायोंके साथ प्रोता हूआभी पढने योग्य है.

अथ जेकर तुं कहेगा के ललितविस्तरामें श्रीहरिभद्रसूरिजीका करा हूआ व्याख्यान हमकूं प्रमाण नही है तब तो सकल चैत्यवंदनाके क्रमका अभाव होवेगा. क्योंके सूत्रमें चैत्यवंदनाका ऐसा क्रम कहा नही है. और ललितविस्तरा बिना चैत्यवंदनाके क्रमका अन्यग्रंथमें व्याख्यानके अभावसें कदाचित् किसी ग्रंथमें व्याख्यान कराभी होगा. सोभी ललितविस्तराके अनुसारी होनेसें पीछेंही करा है, और नवीन व्याख्यान, जेकर कोइ अज्ञानी करे तोभी सो व्याख्यान, संसारकी वृद्धि करनेवाला है, और जो ललितविस्तरामें व्याख्यान है, सो गुरुपरंपराके उपदेशसें आया है इसवास्ते स्वछंद कल्पनासें नही है. यहां मध्यस्थ होके विचार करणा योग्य है, सूक्ष्म

बुद्धि करकें सूत्रका रहस्य चिंतन करणा, और श्रुतवृद्धोंकी सेवा करणी योग्य है, कदाग्रहरहित प्रवर्त्तना चाहियें. और अपनी शक्त्यनुकूल यत्न करना चाहियें ॥

ऐसें दूसरा, दसवा अरु अग्यारहवा यह तीन वर्जके शेष प्रथमादिसें लेकर बारमे अधिकार पर्यंत नव अधिकार गुरु परंपराके उपदेशसें आये हूए ललितविस्तरामें व्याख्यान कर गए है.

तहां सिद्धा इति सिद्धं आदि शब्दसें पाक्षिक सूत्रकी चूर्ण्यादि ग्रहण करनी, तहां पाक्षिकसूत्रमें ऐसा सूत्र है " देवसक्खियत्ति " ॥ अत्र चूर्णिः ॥ विरतिके अंगीकार करणके कालमें चैत्यवंदनादि उपचारकें अर्थात् चैत्यवंदनामें सम्यक्दृष्टि देवताका कायोत्सर्ग करणे और थुइके पठनरूप उपचारके कर ऐसें अवश्यमेव यथा संनिहित देवता निकट होता है, इस वास्ते देवसक्खियं ऐसा पाठ पढते हैं, यह इहां भावार्थ है.

गणधरोंनें प्रथम दृढताके वास्ते पांचकी साक्षिसें धर्म्मानुष्ठान प्रतिपादन करा है. लोकमेंभी दृढ व्यवहार, पंचोंकी साक्षिसें करा देखनेमें तैसेही आता है. तहां पाक्षिकसूत्रमें देवताभी साक्षी कहे हैं, ते दे

वता जे चैत्यवंदनादिकके उपचारसें निकट हूए हैं, वे देवता साक्षिपणा अंगीकार करते है. क्योंके चैत्य वंदनामें तिन देवतायोंका कायोत्सर्ग करणा और तिनकी थुइ कहनी यह उपचार करिये हैं, अन्य कोइ उपचार तहां संजवे नही है, और हमने अन्य कोइ श्रवणाजी नही करा है. तव तो यह सिद्ध हूआ के चैत्यवंदनामें सम्यक्दृष्टि देवताका कायोत्सर्ग करणा, और तिनकी थुइ साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकाकों अवश्यमेव कहनी चाहिये; अन्यथा अपर उपचार तो तिनका कोइ है नही. तिस वास्ते तिनका साक्षी होनाजी सिद्ध नही होवेगा, चूर्णिकार तैसेंही व्याख्यान करणेसें निश्चय करते है, सो पाठ यह है. " देवसक्खियं " इति सूत्र प्रामाण्यात् ॥

तथा ३०४ के पत्रेका पाठ ॥ तथा प्रवचनसुराः सम्यग्दृष्टयो देवास्तेषां स्मरणार्थं वैयावृत्यकरेत्यादि विशेषणद्वारेणोपबृंहणार्थं क्षुद्रोपद्रवविद्रावणादिकृते तत्तद्गुणप्रशंसया प्रोत्साहनार्थमित्यर्थः । यद्वा तत्कर्तव्यानां वैयावृत्त्यादीनां प्रमादादिना श्लथीनूतानां प्रवृत्त्यर्थमश्लथीनूता नतु स्थैर्याय च स्मरणात् ज्ञापनात् तदर्थं सारणार्थं वा प्रवचनप्रनावनादौ हित

कार्यें प्रेरणार्थक उत्सर्गः कायोत्सर्गः चरम इति शेषः इत्येतानि निमित्तानि प्रयोजनानि फलानीति यावद् ष्टौ चैत्यवंदना या नवंतीति शेषः । इह च यद्यपि वैया वृत्त्यकरादयः स्वस्मरणाद्यर्थं क्रियमाणं कायोत्सर्गं न जानते, तथापि तद्विषयकायोत्सर्गात् वसुदेवहिंम्युक्तस्य तत्कर्तुः श्रीगुप्तश्रेष्ठिन इव विघ्नोपशमादिषु शुन सिद्धिर्नवत्येव आप्तोपदिष्टत्वेनाव्यनिचारत्वात् यथा स्तंननीयानिः परिज्ञाने आप्तोपदेशेन स्तंननादिकर्म्म कर्तुः स्तंननाद्यनीष्टफलसिद्धिः। उक्तं च चूर्णौ तेसिमवि न्नाणे विहु, तवि सउस्सग्गउ फलं होइ ॥ विघ्घज्ज य पुन्नवं धाइ कारणं संतताए एत्ति ज्ञापयति चैतदि दमेव कायोत्सर्गप्रवर्तकं वेयावच्चगराएमित्यादि सूत्रम् अन्यथानीष्टफलसिद्ध्यादौ प्रवर्तकत्वायोगात् उक्तं च ललितविस्तरायां तदपरिज्ञानेऽप्यस्मात्तशुनसिद्धावित मेव वचनं ज्ञापकमिति श्रीगुप्तश्रेष्ठिकथां त्वियम् ॥

नाषा ॥ तथा प्रवचनदेवता सम्यक्दृष्टि देवता तिनके स्मरणार्थे वैयावृत्त्यकर इत्यादि विशेषणो द्वारा तिनकी उपबृंहणा करणेके अर्थे क्षुद्रोपद्रवके दूर करणे वास्ते तिसके ते ते गुणोंकी प्रशंसा करके तिस्के नत्साह उत्पन्न करणे वास्ते अथवा तिनके

करणे योग्य वैयावृत्त्यादि कृत्योंके प्रमादादिसें तिनके करणेमें सिथिल हूआंकों प्रवृत्त्य करणेवास्ते, और उद्यमवंतोंकी स्थिरताके वास्ते, तिनके जनावने वास्ते, अथवा प्रवचनकी प्रनावनादि हितकार्यमें प्रेरणार्थे कायोत्सर्ग्ग चरम होता है. यह पूर्वोक्त निमित्त प्रयोजन फल है, यह चैत्यवंदनका तात्पर्यार्थ है.

यहां यद्यपि वैयावृत्त्यकरादि देवता तिनके स्मरणाद्यर्थे क्रियमाण कायोत्सर्ग्ग वे नही जानते है, तोनी तिन विषयिक कायोत्सर्ग्ग करणेसें वसुदेव हिंमयुक्त कायोत्सर्ग्ग करनेवाले श्रीगुप्तश्रेष्ठीकी तरें विघ्नोपशमादिकोमें शुनसिद्धि होतीही है. आपका जो कहना है सो व्यनिचारी नही है. इस वास्ते जैसे थंननी विद्याकों आप्तोपदेशसें थंननादि कर्ममें प्रयुंज्या इष्टफलकी सिद्धि तिन विद्याकी अधिष्ठाताके विना जानेनी होती है.

चूर्णिमें कहा है. तिन वैयावृत्त्यकरादिकोंके विना जाण्यानी कायोत्सर्ग्गका फल विघ्नजय पुण्यबंधादिक होते है. संतताणणत्ति० ॥ जनाता खबर देता है. यही कायोत्सर्ग्गप्रवर्त्तक वेयावच्चगराणं इत्यादि सूत्र अन्यथा मनोवांछित सिद्ध्यादिमें प्रवर्त्तक न हो

वेगा. ललितविस्तरामें कहा है के, यद्यपि जिनका कायोत्सर्ग करीयें है, वे कायोत्सर्ग करतेकों नही जानते है, तोभी तिसके करणेसें शुभसिद्धि होती है. इस कथनमें वैयावृत्त्यकराणं यही सूत्र ज्ञापक प्रमाणभूत है.

अब बुद्धिमानोकों विचारणा चाहियें के संघाचारवृत्तिके इन पूर्वोक्त दोनो लेखोसें सम्यक्दृष्टि देवताका कायोत्सर्ग करणा, और इनकी थुइ कहनी इन दोनो बातोमें किसीभी जैनधर्मीकों शंका रह सकती है. के सम्यक्दृष्टि देवताका कायोत्सर्ग जैनमतके शास्त्रमें करणा कह्या है के नही कह्या है ? इन पूर्वोक्त पाठोसें निश्चें सिद्ध होता है के साधु,साध्वी, श्रावक, श्राविकाने सम्यक्दृष्टि देवताका कायोत्सर्ग अवश्यमेव करणा.

अब रत्नविजयजी जो भोले लोकोंको कहते फिरते है के, इन पाठोंसें हमारा मत सिद्ध होता है, ऐसा कपट छल करकें भोले जीवांकूं कुपथमें गेरना यह क्या सम्यग्दृष्टि, संयमी, सत्यवादी, भवभीरु, धूर्ततासें रहितोंके लक्षण है ? बनिये, विचारे कुछ पढे तो नही है, इसवास्ते इनकूं क्या खबर है

के यह हमारे साथ धूर्त्तताइ करता है वा नही क रता है? यह बात कुछ बनिये समजते नही.

परंतु रत्नविजयजीकूं साधु नाम धरायकें ऐसे ऐसे छल कपटके काम करणे उचित नही है. हमा री तो यह परम मित्रतासें शिक्षा है, मानना न मा नना तो रत्नविजयजीके अधीन है.

तथा रत्नविजयजीकूं इस संघाचारवृत्तिका तात्प र्यार्थभी मालुम नही हूआ होगा नही तो अपने म तकी हानिकारक चिठी इस पुस्तकमें काहेकों ल गवाता ?

तथा आवश्यककी अर्थ दीपिकाका पाठ लिखते है ॥ तथा सम्यग्दृष्टयोऽर्हत्पाक्षिका देवा देव्यश्चेत्येक शेषाद्देवा धरणींद्रांबिकायक्षादयो ददतु प्रयछंतु समा धिं चित्तस्वास्थ्यं समाधिर्हि मूलं सर्वधर्माणां स्कंध इ व शाखानां शाखा वा पुष्पं वा फलस्य, बीजं वांकुर स्य चित्तस्वास्थ्यं विना विशिष्टानुष्ठानस्यापि कष्टानुप्रा यत्वात् समाधिव्याधिर्निर्विधुर्यता तन्निरोधश्च तद्धेतुको पसर्गनिवारणेन स्यादिति तत्प्रार्थनाबोधिं परलोके जि नधर्मप्राप्तिः यतः सावयघरंमिवरहुज्ज चेडउ नाण दंसणसमेउ ॥ मिछत्तमोहिह अमई, माराया चक्कवट्टी

वि ॥ १ ॥ कश्चिद्ब्रूते ते देवाः समाधिबोधिदाने किं स
मर्था न वा यद्यसमर्थास्तर्हि तत्प्रार्थनस्य वैयर्थ्यं यदि
समर्थास्तर्हि दूरभव्याभव्येभ्यः किं न यच्छंति अथैवं म
न्यते योग्यानामेवं समर्थानां. योग्यानां तर्हि योग्यतै
व प्रमाणं किं तैरजागलस्तनकल्पैः। अत्रोत्तरं सर्वत्र यो
ग्यतैव प्रमाणं परं न वयं विचाराक्षमं नियतिवाद्यादि
वदेकांतवादिनः किंतु सर्वनयसमूहात्मकस्याद्वादवा
दिनः सामग्री वै जनिकेति वचनात् तथाहि घटनिष्प
त्तौ मृदो योग्यतायामपि कुलालचक्रचीवरदवरकदंडा
दयोऽपि सहकारिकारणमेवमिहापि जीवस्य योग्यता
यां सत्यामपि तथातथाप्रत्यूहव्यूहनिराकरणेन दे
वा अपिसमाधिबोधि दाने समर्थाः स्युर्मेतार्यस्य प्रा
ग्भवमित्रसुर इवेति बलवती तत्प्रार्थना। ननु देवादि
षु प्रार्थनाबहुमानादिकरणे कथं न सम्यक्त्वमालिन्यं?
उच्यते नहि ते मोक्षं दास्यंतीति प्रार्थ्यंते बहु मन्यते
वा किंतु धर्मध्यानकरणे अंतरायं निराकुर्वंतीति नैवं
कश्चिद्दोषः पूर्वश्रुतधरैरप्याचीर्णत्वादागमोक्तत्वाच्च उ
क्तं चावश्यकचूर्णौ श्रीवज्रस्वामिचरिते तञय अन्नासे
अन्नोगिरीत गया तत्थ देवया ए काउस्सग्गो कउ सावि
अप्नुठिआ अणुग्गहत्ति आणुन्नायमिति आवश्यकका

योत्सर्गनिर्युक्तावपि ॥ चाउम्मासिअवरिसे, उस्सग्गो खित्त देवआएअ ॥ परकिअ सिज्कसुराए, करेंति चउमासिए वेगे ॥१॥ बृहद्भाष्येपि। पारिअ काउस्सग्गो, परमिठीणं च कयनमुक्कारो ॥ वेयावच्चगराणं, दिज्ज थुई जरकपमुहाणं ॥ १४४४ प्रकरण कृत श्रीहरिन्नद्र सूरयोऽप्याहुः ललितविस्तरायां चतुर्थी स्तुतिर्वैयावच्चगराणमिति। तदेवं प्रार्थनाकरणेऽपि न काचिदयुक्तिरिति सप्तचत्वारिंशगाथार्थः॥ ४७ ॥

नाषा ॥ तथा सम्यक्दृष्टि श्रीअरिहंतके पक्षी देवता और देवी जो है, देवता धरणींइ अंबिकादि यक्ष देउ चित्त समाधि चित्तका स्वस्थ पणा द्यो, क्योंकि समाधिही सर्व धर्मोका मूल है. जैसे शाखायोंका? फूल, फलका, बीज अंकूरका मूल, स्कंध है तैसें यहन्नी जान लेना चित्तके स्वास्थ्य विना सर्वानुष्ठान कष्टतुल्य है. वैधूर्यताका निरोध करणा, उसकों समाधि कहना सो वैधूर्यताका हेतु जो उपसर्ग है तिसके निवारण करणेसें होती है इस वास्ते तिसकी प्रार्थना है.

तथा बोधि जो है सो परलोकमें जिनधर्मकी प्राप्तिका नाम है. कहा नी हैकि मैं परनवमें श्रावकके घ

रमें ज्ञान दर्शन संयुक्त जो दासनी हो जाउं तो अच्छा हे. परंतु मिथ्या मोहमति वाला चक्रवर्त्तीराजा नी न होउं. इहां कोइ प्रश्न करता है. ते देव जो हे वो समाधि अरु बोधि देनेकों समर्थ हे वा नही हे? जे कर कहोगेकि असमर्थ हे तवतो तिनसें जो प्रार्थना करनी हे सो व्यर्थ हे, जे कर कहोगे कि समर्थ हे तो दूरनव्य और अनव्योंकों क्यों नही देते हे? जे कर हे आश्चर्य तूं ऐसे मानेगाके योग्य पुरुषोंकों देते हें तवतो योग्यताही प्रमाणनूत हुइ. तव बकरीके गलेके थणासमान निरुपयोगी तिन देवतायोंकी कल्पना करणेसें क्या फल हे?

अत्रोत्तरं ॥ सर्वत्र योग्यताही प्रमाण हे, परंतु तर्कसहने असमर्थ होणहार वादीके मत मानने वालोंकी तरें हम एकांतवादी नही हे, किंतु सर्व न्यायात्मक स्याद्वादवादी हे. सामग्रीही जनक हे, इस वचनके प्रमाणसें जानना. सोई दिखाते हे.

जेसे घट निष्पत्तिमें माटीकों योग्यतानी हे तोनी कुंनार, चक्र, चीवर, दोरा, दंमादिकनी सहकारी कारण होवे तवही घट वनता हे. तेसे यहांनी जे कर जीवमें योग्यताके हूएनी तथा तथा विघ्न समूहोंके

दूर करणेसें मेतार्यमुनिके पूर्व जीवके मित्र देवताकी तरें देवताभी समाधि अरु बोधि देनेमें समर्थ है. इस वास्ते तिनोंकी प्रार्थना बलवती है.

फेर वादी तर्क करता है कि देवादिकोंके विषे प्रार्थना बहुमानादि करनेसें तुमारी सम्यक्त्व मलीन क्यों नही होवेगी? अपि तु होवेगीही.

उत्तरः—वो देवता हमकों मोक्ष देवेंगे इस वास्ते हम तिनकी प्रार्थना बहुमान नही करते है, किंतु धर्मध्यानके करणेमें जो कदापि विघ्न आ कर पडे तो तिनको विघ्न दूर करते हैं,इस वास्ते प्रार्थना करते है.पूर्व श्रुतधारीयोंने इसकों आचरणेसें,और आगममें कहनेसें, ऐसें करणेमें कोइभी दोष नही है.

आवश्यक चूर्णिमें श्रीवज्रस्वामिकें चरित्रमें ऐसें कहा है. वहां निकट अन्य पर्वतथा वाहां गए तहां देवताका कायोत्सर्ग करा, सो देवी जागृत भइ, अरु कहने लगीकी तुमने मेरे पर बडा अनुग्रह करा ऐसें कहके आज्ञा दीनी.

तथा आवश्यक कायोत्सर्ग निर्युक्तिमेंभी कहा है कि चातुर्मासी संवत्सरिके प्रतिक्रमणेमें क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करणा. और पक्षिप्रतिक्रमणेमें भवनदेव

ताका कायोत्सर्ग करणा, केश्क चातुर्मासीमेंनी नव नदेवताका कायोत्सर्ग करते है.

वृहद्भाष्यमेंनी कहा हैकी कायोत्सर्ग पारके, औ र पंचपरमेष्ठिकों नमस्कार करके, "वेयावच्चगराणं०" वैयावृत्त्यादि करणेवाले यक्ष देवताकी थुई कहे.

तथा चौदहसें चुंवालीस १४४४ प्रकरणके कर्त्ता श्रीहरिनद्रसूरिजीनेंनी ललितविस्तरा ग्रंथमें कहा है कि चौथी थुइ वैयावृत्य करनेवाले देवतायोंकी कहनी इसवास्ते प्रार्थना करणेमें कोइनी अयुक्ति नही है. इति सेंतालीशमी ४७ गाथाका अर्थ है, यह श्रावकके आवश्यकके पाठकी टीका है–अब जो कोइ इसकों न माने तिसकों दीर्घ संसारिके शिवाय और क्या कहियें?

तथा विधिप्रपाग्रंथका पाठ लिखते है. पुव्वोलिंगि या पडिक्कमण सामायारी पुण एसा ॥ सावउ गुरुहिं समं इक्को वा जावंति चेइयाइं तिगहा डुग थुत्त पणि हाणवद्धं चेइयाइं वंदितु चउराइ खमासमणेहिं आ यरियाई वंदिय नूनिहियसिरो सव्वस्सवि देवसिय इच्चा इ दंमगेण सयलाइयार मिच्छुक्कडं दाउं उठिय सा माइय सुत्तं नणितुं इच्छामि ठाइउं काउस्सग्गमिच्चाइ

सुत्तं नणिय पलंबिय नुय कुप्पर धरिय नानि अहो झाणुद्धं चनरंगुल ठविय कडिपट्टो ॥ सज्जइ कविगाइ दोसरहियं काउस्सग्गं काउं जहक्कमं दिणकए अइयारे हिए धरिय नमोक्कारेण पारिय चउवीसत्थयं पढिय संमासगे पमज्जिय उवविसिय अलग्गवियय वाहु जुउ मुहणंतए पंचवीसं पडिलेहणाउ काउं काए वितत्तियाउ चेव कुणइ साविया पुण पुट्ठि सिरहिययं वचं पन्नरसकुणइ ॥ उट्ठियबत्तीसदोसरहियं पणवीसावस्सय सुद्धं किइ कम्मं काउं अवणयग्गो करजुय विहिधरियपुत्ती देवसियाइयाराणं गुरुपुरउ वियडणं आलोयणदंमगं पढइ ॥ तउ पुत्ती एकठ्ठासणं पाउंछणं वा पडिलेहिय वा मज्झाणुठ्ठियदाहिणं चउद्धं काउं करज्जुय गहिय पुत्तीसम्मं पडिकमण सुत्तं नणइ तउ दव्वनावुठ्ठिउ अब्भुट्ठिउमि इच्चाइ दंमगं पढित्तावंदणदाउपणाइसुकइ सुतिन्नि खामित्ता ॥ सामन्नसाहूसुपुणठवणायरिएण समं खामणं काउ तउ तिन्निसाहूखामित्तापुणोकीकम्मंकाउ उद्द ठिउसिरकयंजलीआयरिय उवज्झाए इच्चाइंगाहातिगं पढित्ता ॥ सामाइय सुत्तं उस्सग्ग दंमयं च नणिय काउस्सग्गे चरित्ताइयारसुद्धिनिमित्तं उज्जोयङ्गं चिंतेइ तउ गु

रुणा पारिए पारित्ता सम्मत्त सुद्धिहेउं उज्जोयं पढिय सव्वलोय अरहंत चेइयाराअणुस्सग्गं काउं उज्जोयं चिंतिय सुयसोहि निमित्तं पुक्करवरदीवढं कड्ढिय पुणो पणवीसुस्सासं काउस्सग्गं काउं पारिय सिद्धत्थव पढित्ता सुयदेवयाए काउस्सग्गे नमोक्कारं चिंतिय तीसेथुइं देइ सुणइ व एवं खित्तदेवयाएवि काउस्सग्गे नमोक्कारं चितिऊण पारिय तथुई दाउं सोउं वा पंचमंगलं पढिय संमासए पमज्जिय उवविसिय पुव्वं च पुत्तिं पेहिय वंदणं दाउं इच्छामो अणुसट्ठितिन्नियथुइओ वद्धमाणक्खरस्सरा तिन्नि थुईउ पढिय सक्कत्थयथुत्तंच नणिय आयरियाई वंदिय पायच्छित्तविसोहणत्थं काउस्सग्गं काउं उज्जोयचउक्कं चिंतिइत्ति ॥ देवसियपडिक्कमणविही ॥

नापा ॥ विधिप्रपाग्रंथमें प्रतिक्रमणेकि विधि ऐसा लिखा हे. पूर्वें जो सामान्य प्रकारे प्रतिक्रमणेकी समाचारी कही थी. सो यह है के श्रावक अपने गुरुके साथ, अथवा एकला जावंति चेइयाइं यह दो गाथा, स्तोत्र, प्रणिधान ये वर्ज्जके, शेष शक्रस्तव पर्यंत चार थुइसें चैत्यवंदना करकें, चार क्षमाश्रमणसें, आचार्यादिकोंकों वांदके नूमि उपर मस्तक लगाके, सव

स्सवि देवसिय इत्यादि दंमकसें सकल अतिचारोंका मिथ्या डुष्कृत देवे. पीछे ऊठके, सामायिक सूत्र कहके, इच्छामि ठाइउं काउस्सग्गं इत्यादि सूत्र पढके, लांबी जुजा करके, नाजीसें चार अंगुल हेठा, अरु जानुसें चार अंगुल ऊंचा, ऐसा चोलपट्टाकों कूहणीयोंसें धारण करी, संयती, कपिछादि दोषरहित, कायोत्सर्ग करे. तिसमें यथाक्रमसें दिनके करे हुए अतिचारोंकों अपने हृदयमें धारके, नमस्कारसें पारके, लोगस्स पढके, संमासे पडिलेहके बैठे. बैठके शरीरके विना लागे बाहु युगल करके मुहपत्तिकी पंचवीस अरु शरीरकी पंचवीस पडिलेहणा करे. अरु श्राविका पीठ, हृदय, शिर वर्जके पंदरा पडिलेहणा करे. पीछे ऊठके, बत्तीस दोष रहित पंचवीस आवश्यक शुद्ध द्वादशावर्त्त वंदणा करे. अंग नमावी, दोनो हाथोमें विधिसें मुखवस्त्रिका धरी, दिवसके अतिचारोंकों प्रगट करणके अर्थें आलोयणा दंमक पढे. तद पीछे मुखवस्त्रिका, कटच्चासन, पूठणा, वा पडिलेहके, वामा जानुं हेठा और दाहिना जानु ऊंचा करके दोनो हाथोंमें मुखवस्त्रिका रखके, सम्यग् प्रतिक्रमणा सूत्र पढे. तद पीछें द्रव्य जावें ऊठके

" अप्बुट्ठिउमि " इत्यादि दंमक पढे. पीछे पांचादि साधु होवें तो तीनकों खामणा करे, और सामान्य साधु होवें तो प्रथम स्थापनाचार्यकों खामणा करके, पीछे तीन साधुकों खमावे, फेर कृति कर्म करे पीछे खडा होके, मस्तके अंजलि करीके आयरिय उवशाय इत्यादि गाथा तीन पढके,सामायिक सूत्र कायोत्सर्गे दंमक पढे कायोत्सर्गमें चारित्राचारकी शुद्धिके अर्थे दो लोगस्स चिंते, तद पीछे गुरुके पाखां पीछें पारके, सम्यक्त्व शुद्धिके वास्ते लोगस्स पढे पीछे सवलोए अरिहंत चेइआराहण कायोत्सर्ग करे ॥ एक लोगस्स चिंति पारके श्रुतकी शुद्धिके वास्ते "पुक्खरवरदी" कहे, पीछें फेर एक लोगस्सका कायोत्सर्ग करी, सिद्धस्तव पढके, श्रुतदेवताका कायोत्सर्ग करे, एक नमस्कार चिंते उसकों पारके, श्रुतदेवीकी थुइ पढे, वा सुणे. ऐसेही खेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करे, तिसमें एक नमस्कार चिंते, वो पारके, खेत्र देवताकी थुइ कहे वा सुणे, पीछे पंच मंगल पढी, संमासा पडिलेही, बेठके मुखवस्त्रिका पडिलेहे, पीछें वांदणा देके, " इछामिअणुसहिं " ऐसें कहे के, दो जानु होके, वर्द्धमानाक्षर स्वरसें तीन थुइ पढे. पीछे शक्र

स्तव पढे, पीछे स्तोत्र पढे, पीछे आचार्यादि वांदी, प्रायश्चित्तकी शुद्धि वास्ते चार लोगस्सका कायोत्सर्ग करे, तद पीछें लोगस्स कहे. इति देवसि पडिक्कमणेकी विधि संपूर्ण ॥

इस विधिमें पडिक्कमणेकी आदिमें चार थुइसें चैत्यवंदन करनी कही है. और श्रुतदेवता अरु क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग अरु इन दोनोकी थुइ कहनी कही है. इस लेखकों सम्यक्त्व धारी मानते है. और मानतेथे, फेर मानेंगेभी परंतु मिथ्यादृष्टितो कभी नही मानेगा इस वास्ते सम्यक्दृष्टि जीवकों तीन थुइका कदाग्रह अवश्य छोड देना योग्य है.

तथा धर्मसंग्रह ग्रंथमें चैत्यवंदनाके भेद कहे है सो पाठ यहां लिखते है ॥ सा च जघन्यादि भेदा त्रिधा यद्भाष्यं नमुक्कारेण जहन्ना चिइवंदण मझदंम थुइ जुअला ॥ पणदंम थुई चउक्कग, थय पणिहाणेहिं उक्कोसा ॥ १ ॥ व्याख्या ॥ नमस्कारेणांजलिबंधशिरोनमनादिलक्षणप्रणाममात्रेण यद्वा नमो अरिहंताणमित्यादिना अथवैकद्व्यश्लोकादिरूपे नमस्कारपाठपूर्वकनमस्क्रियालक्षणेन कारणभूतेन जातिनिर्देशाद्बहुभिरपि नमस्कारैः क्रियमाणा जघन्या

स्वल्पा पाठक्रिययोरल्पत्वाद्वंदना नवतीति गम्यं ॥ १ ॥ णामश्च पंचधा ॥ एकांगः शिरसो नामे स्याद्व्यंगः करयोर्द्वयोः ॥ त्रयाणां नामने त्र्यंगः करयोः शिरसः तथा ॥ १ ॥ चतुर्णां करयोर्जान्वोर्नमने चतुरंगकः ॥ शिरसः करयोर्जान्वोः पंचांगः पंचनामने ॥ ॥ २ ॥ तथा दंमकश्चारिदंतचेश्आणमित्यादिश्चैत्यस्तवरूपः स्तुतिः प्रतीता या तदंते दीयते तयोर्युगलं युग्ममेते एव वा युगलं मध्यमा एतच्च व्याख्यानमिति कल्पगाथामुपजीव्य कुर्वंति तद्यथा निस्सकडमनिस्सकडे, वि चेश्ए सव्वेहिं थुई तिन्नि ॥ वेलं वचेईआए विनाकं एक्किक्किआ वावि ॥ १ ॥ यतो दंमकावसाने एका स्तुतिर्दीयते इति दंमकस्तुतियुगलं नवति ॥ २ ॥ तथा पंचदंमकैः शक्रस्तव १, चैत्यस्तव २, नामस्तव ३. श्रुतस्तव ४, सिद्धस्तवाख्यैः ५, स्तुतिचतुष्टयेन स्तवनेन जयवीअरायेत्यादिप्रणिधानेन च उत्कृष्टा इदं च व्याख्यानमेके "तिन्निवा कट्टई जाव थुईउ तिसिलोश्आ ॥ ताव तह अणुन्नायं कारणेण परेण वा" इत्येनां कल्पगाथां पणिहाणं मुत्त सुत्तीए इति वचनमाश्रित्य कुर्वंति वदनकचूर्णावप्युक्तं तं च चेश्अ वंदणं जहन्न मफिमुक्कोस नेयतो तिविहं

जत्तो नणिअं ॥ नवकारेण जहन्ना,दंमग थुइ जुअल मज्झिमा नेया ॥ संपुन्ना उक्कोसा, विहिणा खलु वंदणा तिविहा ॥१॥ तत्र नवकारेण एकसिलोगोच्चारणतो पणामकरणेण जहणा तहा अरिहंतचेइयाण मिच्चाइ दंमगं नणित्ता काउस्सग्गं पारित्ता थुइ दिज्ज इति दंमगस्स थुइए अ जुअलेणं डुगेणं मज्झिमा नणियं च कप्पे निस्सकडमनिस्सकडेवा वि चेईए सवहिं थुइ तिन्नवेलं व चेइयाणि च नाउं एक्केक्किया वा वि ॥१॥ तहा सक्कत्थयाइ दंमग पंचग थुइ चउक्क पणिहाणं करण तो संपुन्ना एसाउक्कोसेति संघाचार वृत्तौ चैतजाथा व्याख्याने बृहद्भाष्य संमत्या नवधा चैत्यवंदना व्याख्याता तथा च तत्पाठलेशः एतावता तिहाउ वंदणयेत्याद्यद्वारगाथागतनुशब्द सूचितं नवविधत्वमप्युक्तं द्रष्टव्यं उक्तंच बृहद्भाष्ये चेइवंदणा तिन्नेआ,जहन्नेआ मज्झिमाय उक्कोसा ॥इक्किक्का वितिनेया, जहन्नमज्झिमिअ उक्कोसा ॥ १ ॥ नवकारेण जहन्ना,इच्चाई जंच वन्निआ तिविहा ॥ नवन्नेअणा इमेसिं, नेअं उवलरकणं तंतु ॥२ ॥ एसा नवप्पयारा, आइणा वंदणा जिणमयंमि ॥ कालोचिअकारीणं, अणुग्गहत्थं सुहं सव्वा ॥ ३ ॥ इति गाथा बृहद्भाष्ये ए

ग नमुक्कारेणं चिइवंदणया जहन्नयजहन्ना वहुहिं न
मुक्कारेहिं अनेआउजहन्नमविमिआ १ सच्चिअ सक्क
त्र्यंता जहन्न उक्कोसिआमुणेअवा २ नमुक्कारा इ
चिई दंमएगथुइ मज्जिम जहन्ना ४ २ मंगलसक्कत्र्यचि
इ दंमगथुइहिं मज्जमज्जिमिया ॥ ५॥ दंमगपंचगथुइजुअ
लपाटउ मज्जिमुक्कोसा ॥ ६ ३ ॥ उक्कोसजहन्ना पुण
सच्चिअ सक्कत्र्याइ पयंता ॥ ७ ॥ जा थुइ जुअल डुजे
णं डुगुणिअचिइवंदणाइ पुणो ४ उक्कोसमज्जिमासा
ए उक्कोसुक्कोसिआय पुणमेआ पणिवाय पणग पणि
हाणतिअग थुत्ताइं संपुसा ए५ सक्कत्र्यउअ इरिआ डु
गुणिअचिइवदणाइं तह तिन्नि ॥ थुत्तपणिहाणसक्क
त्र्यउअइअ पंचसक्कथया ॥ ६ ॥ उक्कोसा तिविहा
विहु कायवा सत्तिउ उजयकालं ॥ सेसा पुण उन्नेया
चेइअ परिवाडिमाईसु ॥ इति ॥

॥ नवधा चैत्यवदनायंत्रकमिदम् ॥

जघन्य जघन्या १	प्रणाममात्रेण यथा नमो अरिहंताणं इति पाठेन यद्वा एकेनश्लोकेन नमस्काररूपेण ॥१॥
जघन्य मध्यमा. २	वहुभिर्नमस्कारैर्मंगलवृत्तापराभिधानैः ॥ २ ॥

जघन्यो त्कृष्टा. ३	नमस्कार १ शक्रस्तव २ प्रणिधानैः ॥ ३ ॥
मध्यम जघन्या ४	नमस्काराः चैत्यस्तवदंमक। एकः स्तुतिरेका श्लोकादिरूपा इति ॥ ४ ॥
मध्यम म ध्यमा. ५	नमस्काराश्चैत्यस्तव एकः स्तुति द्वयं एकाधिकृतजिनविषया एक श्लोकरूपा द्वितीया नामस्तवरूपा यद्वानमस्काराः शक्रस्तव चैत्यस्तवौ स्तुतिद्वयं तदेव ॥ ५ ॥
मध्यमो त्कृष्टा. ६	ईर्यानमस्काराः शक्रस्तवः चैत्यादिदंमक ४ स्तुति ४ शक्रस्तवः द्वितीयशक्रस्तवांताः स्तव प्रणिधानादिरहिताएकवार वंदनोच्यते ॥६॥
उत्कृष्ट ज घन्या. ७	ईर्यानमस्काराः दंमक ५ स्तुतिः। ४ नमोत्थुणं जावंति जावंत २ स्तवन १ जयवी० ॥ १ ॥ ७ ॥
उत्कृष्टा मध्यम. ८	ईर्यानमस्काराः शक्रस्तव चैत्यस्तव एवं स्तुति ८ शक्रस्तव जावंति २ स्तव ३ जयवीय० ॥ ४ ॥ ८ ॥
उत्कृष्टो त्कृष्टा. ९	शक्रस्तव ईर्यास्तुति ४ शक्रस्तव स्तुतिः ४ शक्रस्तव १ जावंति २ जावंत,स्तव जयवी० शक्रस्तव ॥ ९ ॥

ाषा ॥ चैत्यवंदनाके जघन्यादि तीन भेद हैं. य भाष्यं ॥ नमुक्कारेण इत्यादि गाथा ॥ इसकी व्याख्या ॥ नमस्कार सो अंजलि बांधि शिर नमावणे रूप लक्षण प्रणाममात्र करकें अथवा नमो अरिहंताणं इत्यादि पाठसें अथवा एक दो श्लोकादि रूप नमस्कार पाठ पूर्वक नमस्क्रिया लक्षण रूप करणभूत करकें जातिके निर्देशसें बहुत नमस्कार करके करते हुए जघन्याजघन्य चैत्यवंदन पाठ क्रियाकें अल्प होनेसें होती है ॥ १ ॥ अरु दूसरा प्रणाम है सो पंच प्रकारें है शिर नमावे तो एकांग प्रणाम दोनो हाथ नमाए ह्यंग प्रणाम, मस्तक अरु दो हाथके नमावणेसें त्र्यंग प्रणाम, दो हाथ अरु दो जानु के नमावणेसें चतुरंग प्रणाम, शिर, दो हाथ अरु दो जानु यह पांचों अंगके नमावणसें पंचांग प्रणाम होता है ॥ तथा दंमक अरिहंत चेइयाणं इत्यादि चैत्यस्तवरूप स्तुति प्रसिद्ध है जो तिसके अंतमें देते हैं. तिन दोनुका युगल, ये दोनोही वा युगल यह मध्या चैत्यवंदना है. यह व्याख्यान इस कल्पभाष्यकों आश्रित होके करते है ॥ तथथा निस्सकड, इत्यादि गाथा जिस वास्ते दंमकके अवसानमें एक थुइ जो

देते है ॥ इति दंमक स्तुति युगल होते है ॥ २ ॥ तथा पंच दंमक, शक्रस्तव, चैत्यस्तव, नामस्तव, श्रुतस्तव, सिद्धस्तव, इन पांचों दंमकों करकें. और थुइ चार करके स्तवन कहना जयवीयराय इत्यादि प्रणिधान करके यह उत्कृष्ट चैत्यवंदना, यह व्याख्यान जी कोइ करते हे तिन्निवा इत्यादि गाथा इस कल्पकी गाथा के वचनकों और पणिहाणं मुत्तसुत्तीए इस वचनकों आश्रित होके करते है ॥ ३ ॥

वंदनक चूर्णिमें जी कहा है सो कहते हे सो चैत्यवंदना जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट नेदसें तीन प्रकारें है जिस वास्ते कहा है नवकारेण जहन्ना इत्यादि गाथा तिहां नवकार एक श्लोक उच्चारणसें प्रणाम करणे करकें जघन्या चैत्यवंदना होती है ॥ १ ॥ तथा अरिहंत चेइयाणं इत्यादि दंमक कहकें कायोत्सर्ग पारके थुइ देते है सो दंमक और थुइके युगल दोनु करके मध्यम चैत्यवंदना होती है कल्पमें निस्सकड इत्यादि गाथासें कहा है ॥ २ ॥ तथा शक्रस्तवादि दंमक पांच, और थुइ चार, और प्रणिधान पावसें संपूर्ण उत्कृष्ट चैत्यवंदना होती है ॥ ३ ॥

तथा संघाचार वृत्तिमें इस गाथाके व्याख्यानमें बृह

भाष्यकी सम्मतिसें नवप्रकारकी चैत्यवंदना कही है. तथा च तत्पाठलेशः॥ एतावता तिहाउ वंदणये त्याद्य द्वार गाथा गत तु शब्दसें सूचित नव प्रकारसें चैत्य वंदना जानने योग्य, दिखलाने योग्यहे॥ उक्तंच वृद्द भाष्ये ॥ इसके आगें जो महाभाष्यकी गाथा है तिसका अर्थ उपर कहा है तहांसें जान लेना ॥ जब इसतरे जैनमतके शास्त्रोमें प्रगट पाठ है तो क्या रत्नविजयधनविजयजीने यह शास्त्र नही देखे होवेंगे अथवा देखे होवेंगे तो क्या समजणमें नही आए होंगे समजे होंगेतो क्या भाष्यकार, चूर्णिकारादिकोंकी बुद्धिसे अपनीबुद्धिकों अधिक मानके तिनके लेखका अनादर करा होगा आदर करा होगा तो क्या सत्य नही माना होगा सत्य नही माना तो क्या अन्यमतकी श्रद्धा वाले हे जेकर अन्यमतकी श्रद्धा नही हे तो क्या नास्तिक मतकी श्रद्धा रखते है. जे कर नास्तिकमतकी श्रध्धा नही रखते हे तो क्या मारवाड मालवादि देशोंके श्रावकोंसें कोइ पूर्व जन्मका वैर भाव हे? जिस्से भाष्यकार, चूर्णिकारादि हजारो पूर्वचार्योंका मतसें विरुद्ध जो तीन थुइका कुपंथ चलाके

तिनकी श्रद्धाकुं फिरायके उनोका मनुष्यजव बिगाड नेकी इच्छा रखते है.?

अहो जव्यजीवो हम तुमसें सत्य कहते हैंकि जे कर तुम जाष्यकार, चूर्णिकारादि हजारों पूर्वाचार्योंके माने हूए चार थुइके मतकों उथापोगे तो निश्चयसें दीर्घ संसारी और अशुजगति गामी होवेंगे. जेकर रत्नविजयजीके चलाए तीन थुइके पंथकों न मानोगे और पूर्वाचार्योंके मतकों श्रद्धोगे, तिनके कहे मुजब चलोगे तो निश्चेंही तुमारा कल्याण होवेगा इसमें कुछजी क्वचित् मात्र संशय जानना नहीं. किंबहुना॥

तथा धर्मसंग्रह ग्रंथमें देवसि पडिक्कमणेकी विधिका ऐसा पाठ लिखा है सो यहां लिखते हैं ॥ पूर्वाचार्य प्रणीताः गाथाः ॥ पंचविहायार विसुद्धि, हेउमिह साहु सावगो वावि॥ पडिक्कमणं सह गुरुणा, गुरुविरहे कुणइ इक्को वि ॥१॥ वंदित्तु चेइयाईं, दाउं चउराइ ए खमासमणे ॥ जूनिहिअसिरोसयला, इआरे मिछा डुक्कडं देइ ॥ २ ॥ सामाइअ पुव्व मिछामि, गउं काउस्सग्गमिच्चाइ ॥ सुत्तं जणिअ पलंबिअ, जुअ कुप्पर धरिअ पहिरणउ ॥ ३ ॥ घोडगमाई अ दोसेहिं, विरहि अंतो करइ उस्सग्गं ॥ नाहिअहोजाणुद्ध,चउरंगुल

हविअ कडिपट्टो ॥४॥ तऊय धरेइ हिअए, जहक्कमं दिणकएअ अईआरे ॥ पारित्त णमोकारेण, पढइ च उवीस थयदंमं ॥५॥ संमासगे पमजिअ, उवविसिअ अलग्ग विअय बाहुजुउ ॥ मुहणं तगंच कायं, पेहेए पंचवीस इह ॥ ६ ॥ उठ्ठिअठिउ सविणयं, विहिणा गुरुणो करेइ किइ कम्मं ॥ बत्तीसदोसरहिअं, पणवीसावस्सगविसुद्धं ॥७॥ अह सम्म मवणयंगो, करजुग विहि धरिअ पुत्ति रयहरणो ॥ परिचिंतिअ अ इआरे, जहक्कम्मं गुरु पुरोविअडे ॥ ७ ॥ अह उववि सित्तु सुत्तं, सामाइअ माइअ पढिअ पयउ ॥ अप्नुठि उम्हि इच्चाइ, पढइ डुहउ ठिउ विहिणा ॥ ए ॥ दाकण वंदणं तो, पणगाइ सुजइ सुखामए तिन्नि ॥ किइ क म्मं किरिआयरिअ, माइ गाहातिगं पढइ ॥१०॥ इअ सामाइअ उस्सग्ग, सुत्त मुच्चरिअ काउस्सग्ग ठिउ ॥ चितइ उज्जोअडुगं, चरित्त अइआर सुद्धिकए ॥ ११ ॥ विहिणा पारिअ सम्मत्त, सुद्धि हेउंच पढइ उज्जोअं ॥ तह सव्वलोअ अरिहं,त चेइआराहणुस्सग्गं ॥ १२ ॥ काउ उज्जोअगर, चिंतिअ पारेइ सुद्धसंमत्तो ॥ पुक्कर वरदीवड्ढं, कढइ सुअ सोहण निमित्तं ॥१३॥ पुण प ण वीसुस्सासं, उस्सगं कुणइ पारए विहिणा ॥ तो

सयल कुसल किरिश्रा, फलाण सिद्धाण पढइ थयं ॥१४॥ अह सुश्र समिद्धि हेउं, सुश्र देवीए करेइ उ स्सग्गं॥ चिंतेइ नमोकारं, सुणइ व देईव तीइ थुयं॥१५॥ एवं खित्तसुरीए, उस्सग्गं कुणइ सुणइ देइ थुइं॥ पढि ऊण पंच मंगल, सुवविसइ पमज्ज संडासे॥१६॥ पु व्व विहिणेव पेहिश्र, पुत्तिं दाऊण वंदणे गुरुणो॥ इ च्छामो अणुसठित्ति, नणिउ जाणुहिं तो गाई॥१७॥ गुरु थुई गहणे थुइतिन्नि, वद्धमाणरकरस्सरो पढई॥ सक्कछयछवं पढिश्र, कुणइ पछित उस्सग्गं॥१८॥ एवंता देवसियं॥

नाषाः—इस उपरले विधिमें देवसि पडिक्कमणेमें प्रथम चैत्यवंदना चार थुइसें करणी पीछें अंतमें श्रु त देवता और क्षेत्र देवताका कायोत्सर्ग करणा औ र तिनकी थुइउ कहनी ऐसे कहा है॥

यह धर्मसंग्रह प्रकरण श्रीहीरविजयसूरिजीके शिष्यके शिष्य श्रीमानविजय उपाध्यायजीका रचा हु वा है और सरस्वतीने जिनकों प्रत्यक्ष होके न्याय शास्त्र विद्या और काव्य रचनेका वर दीना. अरु जिनकों काशीमें सर्व पंमितोने मिलके न्यायविशार द न्यायाचार्यकी पदवी दीनी, और जिनोने अत्य

भुत ज्ञानगर्भित एसे नवीन एकसौ ग्रंथ रचे है, और जिनोने अनेक कुमतियोंका पराजय कीया, और दुःकर क्रिया करी, पट्शास्त्र तर्कालंकारका वेत्ता, ऐसे श्रीमदुपाध्याय श्रीयशोविजयगणीजीने जिस धर्मसंग्रह ग्रंथकूं शोध्या है.

अवजानना चाहीयेंकि ऐसे ऐसे महान्पुरुषोके वचन जो कोई तुच्छबुद्धि पुरुष न माने तो फेर ऐसे तुच्छबुद्धिवालेका वचन मानने वालेसें फेर अधिक मूर्खशिरोमणि किसकूं कहना चाहियें?

हमकूं यह वडा आश्चर्य मालुम होता है के रत्नविजयजी अरु धनविजयजी अपनी पट्टावलीमें श्रीजगच्चंद्रसूरिजी तपा विरुदवालोंकू अपना आचार्य लिखते है, तद पीछें देवसूरि, प्रभसूरि, अर्थात् विजयदेवसूरि. विजयप्रभसूरि प्रमुख लिखते है, अरु लोकोंके आगे तपगछका नाम तो नही लेतें है. कोइ पूछे तिनकूं अपने गछका नाम सुधर्मगछ वतलाते है ऐसा कहनेसें तो इनोकी वडी धूर्त्तताइ सिद्ध होती है क्योंके यह काम सत्यवादियोंका नही है. जेकर एक लिखना और दूसरा मुखसें वोलना? और तपगछकी समाचारी जो श्रीजगच्चंद्रसूरि, देवेंद्रसूरि

धर्मघोषसूरि तथा तिनकी अवच्छिन्न परंपरासें चलती है, तिसकों छोडकें स्वकपोलकल्पित समाचारीकों सुधर्मगच्छकी समाचारी कहनी यहनी उत्तम जनोके लक्षण नही है ॥

नला. और जिनकों अपने पट्टावलीमें नाम लिखकर अपना बडे गुरु करके मानना, फेर तिनोकीही समाचारीको जब जूठी माननी तबतो गुरुभी जूठे सिद्ध हूवे? जब रत्नविजयजी धनविजयजीका गुरु जूठे थें तबतो इन दोनोकी क्या गति होवेगी?

तथा नवांगी वृत्तिकार जो श्रीअभयदेवसूरिजी तिनके शिष्य श्रीजिनवल्लभसूरिजीने रची हुइ समाचारीका पाठ लिखते है ॥ पुण पणवीसुस्सासं, उस्सग्गं करेइ पारए विहिणा ॥ तो सयल कुसल किरिया, फलाणसिद्धाणं पढइ थयं ॥१४॥ अह सुय समिद्धि हेउं, सुयदेवीए करइ उस्सग्गं ॥ चिंतेइ नमुक्कारं, सुणइ देइ तिए थुइ ॥ १५ ॥ एवं खित्तसुरीए, उस्सग्गं करेइ सुणइ देइ थुई ॥ पढिऊण पंचमंगल, मुवविसइ पमज्ज संडासे ॥ १६ ॥ इत्यादि ॥

नाषा ॥ श्रीजिनवल्लभ सूरि विरचित समाचारिमें प्रथम पडिक्कमणेमें चार थुइसें चैत्यवंदना करनी

पीछे प्रतिक्रमणेकें अवसानमें श्रुतदेवता अरु क्षेत्र देवताका कायोत्सर्ग करणा, और इनोंकी थुइयां कहनी, यह कथन पंदरावी अरु सोलावी गाथामें करा है. जब श्री अजयदेवसूरि नवांगी वृत्तिकारक के शिष्य श्रीजिनवल्लभसूरिजीकी बनवाइ समाचारीमें पूर्वोक्त लेख है तब तो श्रीअजयदेवसूरिजीसें तथा आगु तिनकी गुरु परपरासें चार थुइकी चैत्य वंदना और श्रुतदेवता अरु क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करणा और तिनकी थुइ कहनी निश्चयही सिद्ध होती है, तो फेर इसमें कुछभी वाद विवादका झगडा रह्या नही, इस वास्ते रत्नविजयजी अरु धनविजयजी तीन थुइका कदाग्रह छोड देवे, तो हम इनेकों अल्पकर्मी मानेंगे ॥

तथा वृहत्खरतर गछकी समाचारीका पाठ लिखते हैं ॥ पुवोल्लिंगीया पडिकमण समायारी पुणएसा ॥ सावउ गुरुहिसमं, इक्कोवा जावति चेइयाइं ति गाहा ॥ डुगथुत्तिपणिहाण वयं चेइयाइं वंदित्तु चउराइ खमासमणेहिं आयरियाई वदिय नूनिहियसिरो सव्वस्स देवसिय इच्चाइ दंमगेण सयलाइयार मिछुक्कडं दाउं उठिय सामायिय सुत्तं नणिउं इच्छामि ठा

इत्तं काउस्सग्गमिच्चाइ सुत्तं नणिय पलंबिय भुय कु
प्पर धरियनाजिअहो जाणुडुं चउरंगुल उविय क
डिय पट्टो संजइ कविठ्ठाइ दोसरहिअं काउस्सग्गं जंका
उं जहक्कमं दिणकए अइयारे हियए धरिय नमोक्कारे
ण पारिय चउवीसं पडिलेहणाउ काउं काए वितत्ति
याउ चेव कुणइ। साविया पुण पिठि सिरहिययवज्जं
पन्नरसकुणइ। उठिय बत्तीसदोसरहियं पणवीसा
वस्सय सुद्धं किइ कम्म काउं अवणयंगो करजुय
विहि धरिय पुत्तीदेवसियाइयाराणं गुरुपुरउ वियड
णळं आलोयण दंमगं पढइ। तउ पुत्तीए कट्ठास
णं पाउंउणं वा पडिलेहिय वामं जाणु हिठ्ठा दाहि
णं चउढं काउं करजुय गहिय पुत्तिसम्मं पडिक्कमण
सुत्तं नणइ॥ तउ दव्व नावुठ्ठिउ अप्नुठ्ठिउमि इच्चाइ
दंमगं पढित्ता बंदणं दाउं पण गाइ सुजइ सुत्तिन्नि
खामित्ता सामन्न साहू सुपुण उवणायरिएण समं
खामणं काउं तउ तिन्नि साहू खामित्ता पुणो की क
म्मं काउं उद्धडिउ सिर कयंजली आयरियउवज्जाए
इच्चाइ गाहातिगं पढित्ता सामाइयसुत्तं उस्सग्गदंमगंच
नणिय काउस्सग्गे चारित्ताइयारसुद्धिनिमित्तं उज्जो
यडुगं चिंतेइ। तउ गुरुणा पारिए पारित्ता संमत्तसु

छिहेउं उत्रोयं पढिय सव्वलोय अरहंतचेइयाराहणु स्सग्गं काउं उत्रोयं चिंतिय सुय सोहि निमित्तं पुरक रवरदीवढं कट्टिय पुणो पणवीसुस्सासं काउस्सग्गं काउं पारिय सिद्धत्रव पढित्ता सुयदेवयाए काउस्स ग्गे नमोक्कार चिंतिय तीसे थुइ देइ सुणेइवा ॥ एवं खित्तदेवयाए वि काउस्सग्गे नमोकारं चिंतिऊण पा रिय तत्थुइ दाउं सोचा पंचमंगलं पढिय संमासए प मज्जिय उवविसिय पुवं व पुत्तिं पहिय वदणं दाउं इत्रामि अणुसहिंति नणिय जाणूहिं वाउं वद्धमाण रकरस्सरा तिन्निथुईउ पढिय सक्कत्थयं सुत्तंच नणिय आयरियाई वंदिय पायछित्तविसोहणढं काउस्सग्गं काउं उत्रोय चउक्क चिंति इत्ति ॥ देवसिय पडि क्कमणविही ॥

इस पाठकी नाषा:—जैसें विधिप्रपाके पाठकी ह म यही ग्रंथमें ऊपर कर आए है तैसे जान लेनी. ईस पाठमेंनी प्रतिक्रमणेमें चार थुईसें चैत्यवंदना क रनी और श्रुतदेवता तथा क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग अरु तिनकी थुईयों कहनी कही है.

तथा प्रतिक्रमणा सूत्रकी लघुवृत्तिमें श्रीतिलका चार्य चार थुईमें चैत्यवंदना करनी लिखी है तथा

च तत्पाठः ॥ एष नवमोऽधिकारः एतास्तिस्त्रः स्तुतयो गणधरकृतत्वान्नियमेनोच्यंते आचरणयान्याअपि ॥ तद्यथा उझंते इत्यादि पाठसिद्धा नवरं निसिद्दीयत्ति संसारकारणानि निषेधान्नैषेधिकी मोक्षः । दशमोऽधिकारः ॥ तथा चत्तारीत्यादि एषापि सुगमा नवरं परमठनिठियठा परमार्थेन न कल्पनामात्रेण निष्ठिता अर्था येषां ते तथा एकादशोऽधिकारः अथैवमादितः प्रारभ्य वंदितभावादिजिनः सुधीरुचितमिति वैयावृत्त्यकराणामपि कायोत्सर्गार्थमिदं पठति वेयावञ्चगराणमित्यादि वैयावृत्त्यकराणां गोमुखचक्रेश्वर्यादीनां शांतिकराणां सम्यग्दृष्टिसमाधिकराणां निमित्तं कायोत्सर्गं करोमि अत्र च वंदणवत्तियाए इत्यादि न पठ्यते अपितु अन्नत्थुससीएणमित्यादि तेषामविरतित्वेन देशविरतिभ्योप्यधस्तनगुणस्थानवर्तित्वात् श्रुतयश्च वैयावृत्त्यकराणामिव । एष द्वादशोधिकारः ॥

भाषा ॥ यह नवमा अधिकार पूरा हूआ, यह पूर्वोक्ता सिद्धाणं० ॥ १ जो देवाण० ॥ २ इक्कोवि० ॥ ३ ये तीन थुईयां गणधरकी करी हुई है ईस वास्ते निश्चें कहनी चाहीयें, और आचरणासें अन्य

नी कहीयें हे, सो यह है. उर्यंत इत्यादि पाठ सि
द्ध हे. नवरं निसिहीयत्ति० संसारकारणनिषेधात्
नैषेधिकी मोक्ष. यह दशमोधिकारः ॥ तथा चत्तारि
इत्यादि यहनी सुगम है. नवरं परमठ० परमार्थ
करके परंतु कल्पना मात्रसें नही निष्ठितार्था हूआ
हे ईनको यह एकादशमोधिकारः ॥ अथ आ
दिमें आरंनके वांदे हे नावजिनादिक अथ उचित
प्रवृत्तिके लीये यह पाठ पढे ॥ " वेयावच्चगराणमि
त्यादि " वैयावृत्त्यके करनेवाले जो गोमुख यक्ष,
चक्रेश्वर्यादीकों जो शांतिके करनेवाले, सम्यग्दृष्टि
समाधिके करनेवाले हे इन हेतुयोंसे तिनका कायो
त्सर्ग करता हूं॥ इहां वंदणवत्तियाए इत्यादि पाठ न
कहना अपितु अन्नबूससीएणमित्यादि पाठ कहना.
तिनको अविरति होनेसे देशविरतिसेंनी नीचले गु
णस्थानमें वर्त्तनसें वैयावृत्यकरनेवालोंकों सुना हैं.
यह बारमा अधिकार हे. ईस पाठमेंनी चार थुईसें
चैत्यवंदना करनी कही हे.

तथा अणहिलपुर पाटणके फोफलीये वाडेका
नांमागारमें श्रीअनयदेवसूरिकृत समाचारी हे तिस
का पाठ लिखते हे ॥ प्रव्रजितेन चोनयकालं प्रतिक्र

मणं विधेयमतस्तद्विधिः। सच साधुश्रावकयोरेक एवे ति श्रावकसमाचार्यां पृथक् नोक्तः, तत्र रात्रिकस्य यथा इरिया कुसुमिण सग्गो, जिणमुणिवंदण तहेव सद्याउं ॥ सव्वस्सवि सक्कथउ, तिन्निय उस्सग्ग काय व्वा ॥ १ ॥ चरणे दंसणनाणे, उसुज्जोगुडोतय तई अईयारा ॥ पोत्तीवंदण आलोय, सुत्तं वंदणय खाम णयं ॥ २ ॥ वंदणमुस्सग्गो इब, चिंतणकिं अहं तवं काहं ॥ बम्मासादेगदिणा, इहाणिजा पोरिसि नमो वा ॥ ३ ॥ मुहपोत्ती वंदण पञ्चरकाण अणुसहि तह थुई तिन्नि ॥ जिणवंदण बहुवेला, पडिलेहण राइपडि क्कमणं ॥४॥ अथ दैवसिकस्य ॥ जिणमुणिवंदण अ इया, रुस्सग्गो पोत्तिवंदणा लोए॥सुत्तं वंदण खामण, वंदन तिन्नेव उस्सग्गा॥१॥चरणे दंसणनाणे, उद्योया दोणि एक एका य॥ सुयखेत्तदेवउस्स, ग्गो पोत्तिय वंदणथुइ थुत्तं ॥२॥ पुणरवि खमासमण पुव्वं इब्रकारि तुम्हेम्हं संमत्त सामाइय सुयसामाइयस्स रोवणत्थं नंदिकरावणियं देवे वंदावेह ॥ गुरु वंदेहत्ति नणित्ता तं वामपासे ठवित्ता तेण समं वहृति आहिं ॥ थुईहिं देवे वंदावेइ सिद्धबय पवंतेय सिरिसंति १ संति २ पवयण ३ नवण ४ खित्ताय देवयाण ५ तहा वेया

वस्सगराणय ६ उस्सग्गा हुंति कायव्वा केवलं शांति नाथाराधनार्थं कायोत्सर्गः सागरवरगंभीरेत्यंत लोग स्सुद्योयगराचिंतनतः सप्तविंशत्युच्छ्वासमानः कार्यः। शेषेषु तु नमस्कारचिंतनं क्रमेण स्तुतयः श्रीमते शांतिनाथायेत्यादि ॥ १ ॥ उन्मृष्टरिष्टेत्यादि ॥२॥ यस्याः प्रसादेत्यादि ॥ ३ ॥ ज्ञानादिगुणेत्यादि ॥४॥ यस्याः क्षेत्रं समाश्रित्येत्यादि ॥ ५ ॥ सर्वे यक्षांबिकेत्यादि ॥ ६ ॥ तउ णमोक्कारं कड्ढिय जाणु सुन्नविअ सक्कत्थउ अरिहाणाइ थोत्तं च भणिऊइ जयवीयरायेत्यादिगाथे च इतीयं प्रक्रिया सर्वनंदीषु तुल्यत्वे तत्समोसारणत्वं चेइय वंदणाणंतरं खमासमणपुव्वं भणेइ ॥

इन पाठोंका भावार्थः—राईपडिक्कमणेके अंतमें चार थुइसें चैत्यवंदना करनी कही है. हम ऊपर जितने शास्त्रोंकी साक्षीसें देवसि पडिक्कमणेका विधि लिख आए है. तिन सर्व ग्रंथोंमें राइ पडिक्कमणेके अंतमें चार थुइसें चैत्यवंदना करनी कही है. सेसंउभयकालमिति महाभाष्यवचनप्रामाण्यात् ॥

तथा श्रीअभयदेवसूरिने तथा तिनके शिष्यने देवसि पडिक्कमणेकी आदिमें चार थुइसें चैत्यवंदना करनी कही है और श्रुतदेवता अरु क्षेत्रदेवताका का

योत्सर्ग्ग करना तथा तिनकी थुइ कहनी कही है ॥

तथा सम्यक्त्व देशविरत्यादिके आरोपणेकी चैत्य वंदनामें प्रवचन देवी, जुवन देवता, खेत्र देवता, वे यावच्चगराणं इनके कायोत्सर्ग और इन सर्वोंकी पृथग् पृथग् थुइ कहनी कही है. इस समाचारीके अंत श्लोकमें ऐसें लिखा हैके श्रीअजयदेवसूरिके राज्यमें यह समाचारी रची गइ है. और इसी पुस्तककी समाप्तिमें ऐसें लिखा है इति श्रीखरतरगच्छे श्रीअजयदेव सूरिकृता समाचारी संपूर्णा ॥ यह पुस्तकजी हमारे पास है, किसीकों शंका होवे तो देख लेवे ॥

जैसें इस समाचारीमें विधि लिखि है, तैसेंही श्रीसोमसुंदरसूरिकृत, श्रीदेवसुंदरसूरिकृत, श्रीयशोदेवसूरिके शिष्यके शिष्य श्रीनरेश्वर सूरिकृत समाचारीयोंमें तथा श्रीतिलकाचार्यकृत विधिप्रपा समाचारीमें ऐसा लेख है सो यहां लिख दिखाते हैं ॥

श्रीतिलकाचार्य्यकृत सैंतीस द्वारकी विधिप्रपा समाचारीका पाठ ॥ पुनः गृही क्षमा० इच्छाकारेणतुम्भे अम्हं सम्यक्त्व० श्रुत० देशवि० सामायिक आरोपह गुरु० आरोपणा गृहीइच्छाक्षमा० इच्छाकारेण तुम्भे अम्ह सम्य० श्रुत० देश० सामायिका रोपणत्थु निंदिकरह

गुरु० करेमो गृहीइबं ॥ क्मा० इच्छाकारेण तुम्हे अम्ह सम्य०श्रु०देश०सामायिकारोपणबं नंदिकरणबं चेश्याइं वंदावेह ततः समुच्चाय गुरुः समवसरणाग्रे स्थित्वा गृहिणं वामपार्श्वे निवेश्य ईर्यापथिकीं प्रतिक्रमय्य प्रार्थितं चैत्यवदनादेशं दत्वा गुरुः ससंघस्तेन सह चैत्यवदनां करोति ॥ तद्यथा ॥ समवसरणमध्ये रत्नसिंहासनस्थान्, जगति विजयमानान् चामरैर्वीज्यमानान् ॥ मनुजदनुजदेवैः संततं सेव्यमानान्, शिवपथकथकांस्तानर्हतः संस्तुवेऽहं ॥ १ ॥ शिवयुवतिकिरीटान् शुष्कडुष्कर्मकंदान्, विमलतमसमुद्यत्केवलज्ञानदीपान् ॥ अणुमनुजलुदेहाकारतेजःस्वरुपान्, अधिगतपरमार्थान् नौमि सिद्धान् कृतार्थान् ॥ २ ॥ अतुलतुलितसत्त्वान् ज्ञातसिद्धांततत्त्वान्, चतुरतरगिरस्तान् पंचधाचारशस्तान् ॥ प्रथितगुण समाजान् नित्यमाचार्यराजान् प्रणमत शुगमुख्यान् सक्रियाबद्धसख्यान् ॥ ३ ॥ प्रणयिषु पठनाया न्युद्यतेषु प्रकामं वितरत इह सौत्री वाचनामागमस्य ॥ अगणितनिजकष्टान् कामिताभीष्टसिद्धान् सरससुगमवाचो वाचकान् संस्तवीमि ॥ ४ ॥ दशविधयतिधर्माधारभूतान प्रभूतान् श्रमणशतसहस्रान

श्रमान् स्वक्रियायां ॥ सविनयमतिनक्त्यान्युद्धसञ्चित्त रंगः, सततमपि नमामि क्षामदेहांस्तपोनिः ॥ ५ ॥ चतुर्गात्रं चतुर्वक्त्रं, चतुर्धा धर्मदेशकं ॥ चतुर्गतिविनिर्मुक्तं, नमामि जिनपुंगवं ॥ ६ ॥ इत्यादि नमस्कारान् शक्रस्तवं च नणित्वा, अरिहंत चेश्याणं० लोगस्स उद्योयगरे० ॥ पुरकरवरदीवढ्ढे० सिद्धाणं बुद्धाणं० कायोत्सर्गान् कृत्वा ततः शांतिनाथ आराहणत्थं करेमि काउस्सग्गं वंदणवत्तीयाए० अथ सुयदेवयाए सासण देवयाए सव्वेसिं वेयावच्चगराणं अणुभाणावणत्थं करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थ उससिएणं कायोत्सर्गांश्च ४ दत्वा तत्र शांतिनाथाराधनार्थं कायोत्सर्गे सागरवरगंनीरांतचतुर्विंशतिस्तवं शेषकायोत्सर्गसप्तके श्वासोच्छ्वासं पंचपरमेष्ठिनमस्कारं विचिंत्य नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुन्यः इति नणनरहितं चतुर्विंशतिस्तवश्रुतस्तवकायोत्सर्गांते स्तुतिद्वयं तन्नणनपूर्वकं चापरकायोत्सर्गांते स्तुतिषट्कं गुरुः स्वमेव नणति ताश्चेमाः स्तुतयः। सत्केवलदंष्ट्रं धर्मक्षितिधारं श्रीवीरवराहं प्रातर्नुतवंद्यं ॥ १ ॥ नवकांतारनिस्तारसार्थवाहास्तु देहिनाम् ॥ जिनादित्या जयंत्युच्चैः प्रनातीकृतदिङ्मुखाः ॥ २ ॥ तोयायते मौर्ख्यमला

पनीतौ पद्मायते श्रीगणभृत्सरःसु ॥ राहूयते यत्कुम
तीडुविधे तज्जैनवाक्यं जयति प्रभाते ॥ ३ ॥ किमिय
ममलपद्मं प्रोद्वहंती करेण प्रकटविकचपद्मे संश्रिता
श्रीः सितांगी॥ नहि नहि जिनवीरक्षीरनीरेश्वरस्य श्रुत
सितमणिमालाताभिभाते श्रुतांगी ॥ ४ ॥ यदि चाप
राह्णे नंदिः क्रियते तदा एतासां स्तुतीनां स्थाने
इमाः स्तुतयो भणनीयाः ॥ तद्यथा ॥ नमोस्तु वर्ध
मानाय स्पर्धमानाय कर्मणा ॥ तज्जयावाप्तमोक्षाय
परोक्षाय कुतीर्थिनाम् ॥ १ ॥ येषां विकचारविंद
राज्या ज्यायः क्रमकमलावलिं दधत्या ॥ सदृशैरिति
सगतं प्रशस्यं कथितं संतु शिवाय ते जिनेंद्राः ॥ २ ॥
कषायतापार्दितजंतुनिर्वृतिं करोति यो जैनमुखांबु
दोद्गतः ॥ स शुक्रमासोद्भववृष्टिसंनिभो दधातु तुष्टिं
मयि विस्तरो गिराम् ॥ ३ ॥ स्वसितसुरभिगंधालब्धभृं
गीकुरंगं मुखशशिनमजस्रं बिभ्रती या बिभर्ति ॥
विकचकमलमुच्चैः सा त्वचिंत्यप्रभावा सकलसुखवि
धात्री प्राणिनां सा श्रुतांगी ॥ ४ ॥ शांतिनाथादि
स्तुतिचतुष्टयं च पूर्वाह्णापराह्णयोरप्येकमेव ॥ शांति
नाथः स वः पातु यस्य सम्यक् सनाजनं ॥ कृत क
रोति नि शेषं तेजोस्य शांतिभाजनम् ॥१॥ यत्प्रसादा

द्वाप्यंते पदार्थाः कल्पनां विना ॥ सा देवी संविदे नः स्तादस्तकल्पलतोपमा ॥ २ ॥ या पाति शासनं जैनं सद्यः प्रत्यूहनाशिनी ॥ साभिप्रेतसमृद्ध्यर्थं नूया च्छासनदेवता ॥ ३ ॥ ये ते जिनवचनरता वैयावृ त्योद्यताश्च ये नित्यं ॥ ते सर्वे शांतिकरा नवंतु सर्वा णि यक्षाद्याः॥ ४ ॥

इस उपर ले पाठमें श्रुतदेवता, शासनदेवता, वेयावच्चकराणं इन तीनोका कायोत्सर्ग और ती नोकी तीन थुइयां कहनी कही है. इसीतरें सर्वग छोंकी समाचारीयोंमें यही रीती है. और प्रतिष्ठा कल्पोमेंनी पूर्वोक्त देवतायोंका कायोत्सर्ग अरु थु इयां कहनीयां कही है.

यहा कोइ रत्नविजयजी अरु धनविजयजी प्रश्न करते है के प्रव्रज्याविधिमें और प्रतिष्ठाविधिमें तो हम पूर्वोक्त देवतायोंका कायोत्सर्ग अरु थुइ कहनी मानते है. परंतु प्रतिक्रमणोमें नही मानते.

उत्तरः—प्रतिक्रमणोमें वेयावच्चगराणं, श्रुतदेवता, क्षेत्रदेवता इन तीनोके कायोत्सर्ग, अरु थुइयों कहनी यह सब बात शंकासमाधानपूर्वक अनेक शास्त्रोंकी साक्षीसें हम ऊपर लिख आए है. जेकर रत्नविजय अरु

धनविजयजीकों पूर्वोक्त सुविहित आचार्योंका लेख प्र
माण नही होवे तो फेर धर्मकी प्रवृत्ति जो कुछ चला
नी वो सब पूर्वोक्त आचार्योंकी परंपरासेही चलतीहै
तिसकोंभी छोडके जिसमाफक अपनी मरजीमें आवे
तिसमाफक विचारे भोले जीवोंके आगें चलानेकों कु
छभी मेनत तो नही पडती; परंतु नुकशान मात्र इ
तनाही होता हैकि औसें करनेसें सम्यक्त्वका नाश
हो जाता है. यह बात कोइभी जैनधर्मी होवेगा सो अ
वश्य मंजूर रखेगा फेर जादा क्या कहना.

फेरभी एक बात यह हैकि जब पडिक्कमणेमें पू
र्वोक्त देवतायोंका कायोत्सर्ग करणेसें इनकों पाप ल
गता है? तो क्या प्रव्रज्याविधिमें और प्रतिष्ठावि
धिमें इन पूर्वोक्त देवतायोंका कायोत्सग्गे करनेसें इ
नकों पाप नही लगता होवेगा? यह कहना सत्य
हैकि "आंधे चूहे थोथे धान,जैसे गुरु तैसे यजमान",
इसि माफक है. यह अपक्षपाति सम्यक्दृष्टि निश्चय
करेगा. मारवाड अरु मालवेके रहेने वाले कितनेक
भोले श्रावक तो औसे हैकि जिनोने किसि बहुश्रुतसें
यथार्थ श्रीजिनमार्गभी नही सुना है तिनोकों कुयु
क्तिसें श्रीहरिभद्रसूरियादिक हजारो आचार्यों जो

जैनमतमें महाज्ञानी थे तिनके सम्मत जो चार थुइ श्रुतदेवता, क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करणेरूप मत है तिसकों उडापके स्वकपोलकल्पित मतके जालमें फसाते है. यह काम सम्यग्दृष्टि अरु नवजी रुयोंका नही है.

तथा रत्नविजयजी, धनविजयजीने श्रीजगच्चंद्रसूरिजीकों अपना आचार्यपट्ट परंपरायमें माना है. और तिनके शिष्य श्रीदेवेंद्रसूरिजीनें चैत्यवंदनजाष्यमें और तिनके शिष्य श्रीधर्मघोष सूरिजीने तिसजाष्यकी संघाचार वृत्तिमें चार थुइसें चैत्यवंदनाकी सिद्धि पूर्वपक्ष उत्तर पक्ष करके अछी तरेंसे निश्चित करी है, जिसका स्वरूप हम उपर लिख आए है. तिसकों नही मानते इस्से अपनेही आचार्योंकों असत्यजाषी मानते है, तो फेर रत्नविजयजी, धनविजयजी यहजी सत्यजाषी क्यों कर सिद्ध होवेगें ?

जे कर रत्नविजयजी अरु धनविजयजी अंचलगछके मतका सरणा लेते होवेगे तो सोजी अयुक्त है. क्योकि अंचलगछके मतवाले तो चारोंही थुइ नही मानते है, वे तो लोगस्स, पुरकरवर, सिद्धाणं बुद्धाणं, यह तीन थुइकों मानते है. अन्य नही. यह

वात अंचलकृत शतपदी ग्रंथके १४-१५-१६-प्रश्नोत्तरमें देख लेनी.

तथा तिलकाचार्यकृत विधिप्रपाका पाठ ॥ अथ साधुदिनचर्याविधिः ॥ इह साधवः पाश्चात्यरात्रिघटिकाचतुष्टयसमये पंचपरमेष्ठिनमस्कारं पठंतः समुत्थाय 'किं मे कडं किं च मे किच्चमे संकंसक्कणिज्जं समायरामि किंमे परोपासइ किंच अप्पा किंचाहं खलियं न विवज्जयामि ॥१॥' इत्यादि विचिंत्य ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य चैत्यवंदनां कृत्वा समुदायेन कुस्वप्नदुस्वप्नकायोत्सर्गं गुरून् वंदित्वा यथाज्येष्ठं साधुवंदनं। श्रावकाणां तु मिथो वांदणं नणनं ततः क्षणं आदेशादानेन स्वाध्यायं विधाय ततः क्षमा० इच्छ० पडिक्कमणइठाउं इच्छं क्षमा० सव्वस्स विराईय डुचिंतिय डुप्पासियं डुच्चिठियह मणि वचणि काइं मिच्छामि डुक्कडं शक्रस्तवज्ञणनं ततश्चारित्रशुद्ध्यर्थं करेमि नंते० काउस्सग्गं उज्जोयचिंतणं न पुनरादावेव अतिचारचिंतनं निद्राप्रमादेन स्मृतिवैकल्यसंनवात् ततो दर्शनशुद्ध्यर्थं लोगस्स उज्जोयगरे उज्जोयचिंतणं ज्ञानशुद्ध्यर्थं पुरकरवर० उस्सग्गो अचरकुविसइ जोगुवो सिरियउ इत्याद्यतिचारचिंतनं श्रावकाणां तु नाणंमि दंसणंमीति गाथा

ष्टकचिंतनं ततो मंगलार्थं सिद्धाणं बुद्धाणमिति स्तु तीनां नणनं मुहपत्तीपेहणं वंदणयं नपविश्य प्रति क्रमणसूत्रनणनं अप्नुट्ठिमि आराहणाए पच्चणित्ता वंदणयं खामणयं यदि पंचाद्याः साधवो नवंति तदा त्रयाणां तत्क्रियतां तत्र रात्रिके दैवसिके पाक्षिकादिस त्कसंबुद्धसमाप्तिद्धामणेषु क्षमयितारः सकलं द्धाम णकसूत्रं नणंति क्षमणीयास्तु परपत्तियं पदात् अवि हिणा सारिया वारिया चोश्या पमिचोश्या मणेण वा याए काएण वा मिठामि डुक्कडं इति नणंति। अथ वं दुणपुव्वं बमासिया चिंतणठं आयरिय नवझाए नस्स ग्गा बम्मासिय चिंतणं करिज्ज पच्चरकाणं जाव नद्योयं नणित्ता मुहपत्ती पमिलेहणं वंदणयं पच्चरकाणं श्ठामो अणुसहिं विशाललोचनदलं० इति स्तुतित्रयनणनं शक्रस्तवः। पूर्णा चैत्यवंदना ॥ तिलकाचार्यकृत विधि प्रपामें ॥ संपूर्णा चैत्यवंदना अस्तोत्रा ततो गुरून् वं दित्वा यथाज्येष्ठं साधुवंदनं क्षमा० श्ठापडिक्कमण‌इ ग यहं श्ठं क्षमा० सव्वस्सवि देवसियं० करेमि नंते का नस्सग्गो समग्रं दिनातिचारं चिंतार्थं ॥ श्रावकाणां तु नाणंमि दंसणंमीति गाथाष्टकचिंतार्थं अथ नद्योयं नणित्वा मुहपत्तीपेहणं वंदणयं आलोयणं नपविश्य

पडिक्कमणासूत्रनणनं ततः अप्नुट्ठिोमि आराहणाए नणित्ता वंदणयं खामणयं वंदणयपुव्वं चरितशुद्धिनिमित्तं आयरिय उवसाये० काउस्सग्गो उद्योयङ्गचिंतणं ततो दंसणशुद्धिहेउं उद्योयं नणित्ता उस्सग्गो उद्योयचिंतणं तउ नाणशुद्धिकए पुरकरवर काउस्सग्गो उद्येयचिंतणं अथ शुद्धचारित्रदर्शनश्रुतातिचारा मंगलार्थं सिद्धाणं बुद्धाणं पंच गाथा नणित्वा सुयदेवयाए उस्सग्गतीए थुईखित्तदेवयाए उस्सग्गतीएथुई नमुक्कारं नणित्ता मुहपोत्तीपेहणं ततो यथा राज्ञा कार्यादिष्टाः पुरुषाः प्रणम्य गहंति कृतकार्याः प्रणम्य निवेदयंति एवं साधवोऽपि गुर्वादिष्टा वदनकपूर्वं चारित्रादिशुद्धिं कृत्वा पुनर्निवेदनाय वंदनं दत्वा नणंति इच्छामो अणुसहि नमोस्तुवर्धमानाय इति स्तुतित्रयनणनं शक्रस्तवस्तोत्रनणनं डुरकरवउ कम्मरखउ० आचार्योपाध्यायसर्वसाधुक्षमाश्रमणाणि ॥ क्षमा० इछा० सप्नाउं संदिसावउं क्षमा० इछा० सप्नाउ करउं ॥ ततः स्वाध्यायं कृत्वा गुरून् वंदित्वा यथाज्येष्ठं साधुवंदनम् इति दैवसिकप्रतिक्रमणविधिः ॥

इस उपरले पाठमें राइपडिक्कमणेके अंतमें चार थुइसें चैत्यवंदना करनी कही है. और दैवसिक प्र

तिक्रमणे प्रारंभमें चार थुइसें चैत्यवंदना करनी कही है. श्रुतदेवता अरु क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करना और इन दोनोकी थुइयोंभी कहनी कही है.

तथा श्रीमदुपाध्याय श्रीयशोविजयगणिजीयें पांच प्रतिक्रमणेका हेतुगर्भित विधि लिखी है, तिसका पाठ लिखते हैं ॥ पढम अहिगारें वंदु भाव जिणेसरू रे॥ बीजे दव्वजिणंद त्रीजे रे,त्रीजे रे, इग चेइय ठवणा जिणो रे ॥१॥ चोथे नामजिन तिहुयण ठवणा जिना नमुं रे ॥ पंचमें छठे तिम वंदुरे, वंदुरे विहरमान जिन केवली रे ॥ २ ॥ सत्तम अधिकारें सुय नाणं वंदियें रें, अठमी थुइ सिद्धाण नवमे रे, नवमे रे, थुइ तिहाहिव वीरनीरे ॥ ३ ॥ दशमे उज्जयंत थुइ वलिय इग्यारमें रे, चार आठ दश दोय वंदो रें, वंदोरे, श्रीअष्टापदजिन कह्या रे ॥ ४ ॥ बारमे सम्यग्दृष्टी सुरनी समरणा रे,ए बार अधिकार भावो रे,भावोरे, देव वांदतां भविजना रे॥५॥ वांडु हुं इच्छकारि समस श्रावको रे, खमासमण चउदेइ श्रावक रे, श्रावक रे, भावक सुजस इस्युं भणें रे॥ ६ ॥ तिहाधिप वीर वंदन रैवत मंडन, श्रीनेमि नति तिह सार ॥ चतुरनर ॥ अष्टापद नति करी सुय दें

वया, काउस्सग्ग नवकार चतुरनर ॥ ७ ॥ परी० ॥ क्षेत्र देवता काउस्सग्ग इम करो, अवग्रह याचन हेत ॥ चतुरनर ॥ पंच मंगल कही पूंजी संमासग, मुहपत्ति वंदन देत ॥ चतुरनर ॥ ए ॥ परी० ॥

इस उपरके पाठमें देवसि पडिक्कमणा करतां प्रथम वारा अधिकारसहित चैत्यवंदना करनी कही है. तिसमें चोथा कायोत्सर्ग वेयावच्चगराणंका करणा तिसकी थुइ कहनी कही है ॥ तथा दूसरे पाठमें, श्रुतदेवता और क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करणा कहा है.इसी तरें राइप्रतिक्रमणेके अंतमें चार थुइकी चैत्यवंदना करनी कही है ॥

यह श्रीयशोविजयजी उपाध्यायका पंमितत्त्व जो था सो आज तक सव जैनमति साधु श्रावकोंमें प्रसिद्ध है मात्र जिनके रचे हूवे ग्रंथोंको वाचनेसेंही तो शंका करने वाले वादी प्रतिवादीयोंका मद दूर होजाता है, यह पंमितने सेंकडो ग्रंथोंकी रचना करी है तिसमें कोइनी ग्रंथके विच कोइनी शंकित वात दिखनेमें नही आई है, सब शंकायोंका समाधान करके रचना करी है. यह वात कोइनी समजवान जैनीसें नामंजूर नही होती है.

ऐसे ऐसे महापंमितोने जब चार थुइकी चैत्यवंदना और श्रुतदेवता क्षेत्रदेवताका कायोस्सर्ग प्रतिक्रमणेमें करना लिखा है, तो फेर रत्नविजयजी अरु धनविजयजीकों पूर्वाचार्योंके मतसें विरुद्ध तीन थुइके पंथ चलानेमें कुछनी लज्जा नही आती होवेगी? वे अपने मनमें ऐसे विचार नही करते होवेगेकि? हमतो पूर्वाचार्योंकी अपेक्षासें बहुत तुछ बुद्धिवाले हैं. तो फेर पूर्वाचार्योंके परंपरासें चले आए मार्गकी उछापना करके कौनसी गतिमें जावेंगे. थोडीसी जिंदगीवास्ते वृथा अनिमान पूर्ण होके निःप्रयोजन तीन थुइका कदाग्रह पकडके श्रीसंघमें छेद नेद करके काहेकों महामोहनीय कर्मका उत्कृष्ट बंध बांधना चाहीयें? हमारा अनिप्राय मुजब इनोकें हृदयमें यह बिचार निश्चेसेंही नही आता होवेगा. जेकर आता होवे, तो फेर पूर्वाचार्योंके रचे हूए सेंकडों ग्रंथोंरूप दीपोकी माला हाथमें लेकर काहेकों तीन थुइरूप कदाग्रहके खाडेमें पडनेकी इछा रखते हैं? यह देखनेसें ऐसा सिद्ध होता हैके इनोकों यह बिचार नही आता है.

यह विचारतो अपक्षपाति सम्यग् दृष्टी, नवनी

रू जीवोंकों होता है, परंतु स्वयंनष्ट अपरनाशकाकों तो स्वप्नेंमेंजी असी जावना नही आती है. इस वास्ते हे जोले श्रावको तुम जो आपना आत्मका कल्याण इच्छक हो, अरु परजवमें उत्तमगति, उत्तम कुल, पाकर बोधबीजकी सामग्री प्राप्त करणेके अनिलाषी होवो तो तरन तारन श्रीजिनमतसम्मत असें जैनमतके हजारो पूर्वाचार्योंका मत जो चार थुइयों का है तिनको गेडके दृष्टी रागसें किसी जैनाजासके वचनपर श्रद्धा रखके श्रीजिनमतसें विरुद्ध जो तीन थुइयोंका मत है, तिनकों कदापि काले अंगीकार करण तो दूर रहो, परंतु इनकों अंगीकार करणेका तर्केजी अपने दिलमें मत करो, क्योंके जो धर्म साधन करना होता है सो सब जगवान्के वचनपर शुद्ध श्रद्धा रखनेसें होता है, इसी वास्ते जो श्रद्धामें विकल्प हो जावे तो फेर जैसे महासमुद्रमें सुलटा जहाज चलते चलते उलटा हो जावे तो उन जहाजमें बैठनेवालेका कहा हाल होवे ! तिसी तरें यहांजी जानना चाहीयें. इस वास्ते आप कोइकी देखा देखीसें किंवा किसी हेतु मित्रके पर सरागदृष्टी होनेसें मृगपाशके न्यायें तीन थुइरूप पाशमें मत पडना. इस्सें बहोत सा

वधान रहना चाहीयें. श्रीजिनवचन उत्थापनसें ज
माली जैसे वडे वडे महान्पुरुषोंकोंभी कितना दीर्घ
संसार हो गया है. यह वातों अजबता आप श्राव
कोंमेसें बहोतसें जनोंने सुनी होवेगी तो फेर वो पु
रुषोंके आगें आपनतो कुछभी गणतीमें नही है, तो
फेर हमजादा कहा कहै. यह हमारी परम मित्रता
सें हितशिक्षा है. सो अवश्य मान्य करोगें जिस्सें आ
प सम्यक्त्वका आराधक होके संसारभ्रमणसें बच
जावेगें, श्रीवीतराग वचनानुसार चलेगें तो शीघ्रही
आपना पदकों पावेगें इस बातमें कुछभी संशय रख
ना नही. समजुकों बहोत क्या कहना. हमतो शंका
दूर करणे वास्ते पूर्वाचार्योंके रचे हूए बहोतसे ग्रंथों
का पाठ उपर लिखके समाधान कर दिखाया. फेरभी
कितनेक ग्रंथोका पाठ लिख दिखलाते हैं ॥

तथा श्रीराजधनपुर अर्थात् श्रीराधणपुरके भांडा
गारमें पूर्वाचार्यकृत षडावश्यकविधि नामा ग्रंथ है,
तिसका पाठ यहां लिखते है. षडावश्यकानि यथा॥
पंचविहायारविसु, द्धिहेउ मिह साहु सावगो वावि॥
पडिकमणं सहगुरुणा, गुरुविरहे कुणइ इक्कोवि ॥ १ ॥
वंदित्तु चेइयाइं, दाउं चउराइ ए खमासमणे ॥ भूनि

हिय सिरोसयला, इयारमिल्लोकडं देइ ॥ २ ॥ सामा
इय पुव्वमिल्ला, मी गाइउं काउस्सग्गमिल्लाई ॥ सुत्तं न
णिय पलंविय, लुअ कुप्परधरियपहिरण उ ॥ ३ ॥
घोडगमाई दोसेहिं, विरहीयंतो करेइ उस्सग्गं ॥ ना
हिअहो जाणुड्ढं, चउरंगुल उव्हरिय कडिपट्टो ॥ ४ ॥
तव्वयथरेइ हियए, जहक्कमं दिणकए अईआरे ॥ पा
रेतु नमुकारेण, (इति प्रथममावश्यकम् ॥ १ ॥)
पढइ चउविसल्लयदंमं ॥५॥ इति द्वितीय मावश्यकम्
॥ २ ॥ संमासगे पमज्जिय, उवविसिय अलग्गविय
य वाहुजुउ ॥ मुहणं तगं च कायं, च पेहए यंच
विसई हा ॥ १ ॥ उठियविउ सविणयं, विहिणा गु
रुणो करेइ किइ कम्मं ॥ वत्तीसदोसरहियं, पणवीसा
वस्सग्गविसुद्धं ॥ २ ॥ अह सम्ममवणयंगो, कर
जुअविहियरिअपुत्तिरयहरणो ॥ परिचिंतइ अइयारे,
जहक्कमं गुरुपुरो वियडे ॥ ३ ॥ अह उवविसीतुं (इ
ति तृतीयमावश्यकम् ॥३॥) सुत्तं, सामायिय मायिय
पढिय पयउ ॥ अभुठियम्मि इचा, इ पढइ कुहउठिउ
विहिणा ॥ ४ ॥ दाऊण वंदणंतो, पणगाइ सुजइ सु
खामए तिन्नी ॥ किइ कम्मं करियायरि, यमाइ गाहा
तिगं पढई ॥ ५ ॥ इति तुर्यमावश्यकम् ॥ ४ ॥ इय

सामायिय उस्स, ग्गसुत्त मुच्चरिय काउस्सग्गठिउ ॥ चिंतइ उज्जोअचरि, त्तअश्यार सुद्धिकए ॥ ६ ॥ विहिणा पारीअ (अयं लोगस्स द्वयात्मकश्चारित्रशुद्ध्युत्सर्गः ॥ १ ॥) समत्तस्स द सुद्धिहेउं च पढइ उज्जोअं ॥ तह सव्वलोअ अरिहं,त चेई आराहणुस्सग्गं ॥ ७॥ काउं उज्जोअगरं, चिंतिय पारेइ सुद्धसम्मत्तो ॥ (अयं दर्शनस्य लो० ॥ १।२) ॥ पुक्खरवरदीवड्ढं, कढइ सुअ सोहणनिमित्तं ॥ ८ ॥ पुण पणविसोस्सासं, उस्सग्गं कुणइ पारए विहिणा ॥ (अयं ज्ञानस्यलो ०१॥३॥) तो सयल कुसल किरिया, फलाण सिद्धाण पढइ थय ॥९॥ अहसुअसमिद्धिहेउं, सुअदेवीए करेइ उस्सग्गं॥ चिंतेइ नमुक्कारं, सुणइ वदेइ व तीइ थुई ॥ १० ॥ एवं खित्तसुरीए, उस्सग्गं कुणइ सुणइ देइ थुई ॥ पढिऊण पंचमंगल, मुवविसइ पमज्ज संफासे ॥ ११ ॥ इति पंचममावश्यकम् ॥ ५ ॥ पुव्वविहिणेव पेहिय, पुत्तिं दाऊण वंदणं गुरुणो ॥ इति षष्ठमावश्यकम् ॥ ६ ॥ इच्छामो अणुसट्ठिंति, जणियं जाणुहितो गाइ ॥ १२ ॥ गुरुथुइ गहणे थुइ ति,न्नि वद्धमाणखरस्सरा पढई ॥ सक्कत्थवं थपढिय, कुणइ पच्छित्त उस्सग्गं ॥ १३ ॥ एवं ता देवसिय ॥ इति दैवसिक प्रतिक्रमण विधिः ॥ १ ॥

राइमवि एवमेव नवरितह्निं पढमं दाउं मिच्छामि डुकडं पढइ सक्कत्थयं ॥ १ ॥ उठ्ठिय करेइ विहिणा, उस्सग्गं चिंतए अउज्जोअं ॥ अयं ज्ञानस्य कायोत्सर्गः लो० ॥१॥ बियं दंसणसुद्धिइ॥अयं द्वितीयो दर्शनस्य लो०॥ १।२। चिंतएतत्थइममेव ॥ २ ॥ तइए निसाइआरं, जह्कमं चिंतिऊण पारेइ॥ इति तृतीयश्चारित्रस्य लो० ॥ १।३ ॥ इति प्रथममावश्यकम् ॥१॥ सिद्धत्थयं पडित्ता, पमज्जसंमास मुववसिइ (इति द्वितीयमावश्य कम् ॥ २ ॥) पुव्वं च पुत्ति पेह्हण वंदण मालोय (इति तृतीयमावश्यकम् ॥ ३ ॥) सुत्तपढणं च ॥ वंदण खा मण वंदण गाह्तिगपढण (इति चतुर्थमावश्यकम् ॥ ॥ ४ ॥) उस्सग्गो ॥ ४ ॥ तत्थयचिंतइ संजम, जोगा ए न होइ जणमेहाणी ॥ तं पडिवज्जामि तव,छम्मासं तान काउ मजं ॥ ५ ॥ एमाइ इगुणतीसुण, यं पीन सहो न पंच मासमवि ॥ एवं चउ तिउ मासं, न समत्थो एगमासंपि ॥ ६ ॥ जा तंपि तेर सुण चउ, ती सइ माइउ डुहाणीए ॥ जा चउत्थंनो आयं बिलाई जापोरिसी नमोवा ॥ ७ ॥ जं सक्कइनं हियए, धरेत्तु (इति पंचममावश्यकम् ॥५॥ पेह्हणपोत्तिं दाउं वंदण मसढो तं चिय पच्चक्खए विहिणा ॥ ८ ॥ इति पष्ठमा

वश्यकम् ॥ ९ ॥ इच्छामो अणुसहिंति नणीअ उवविसीअ पढइ तिन्नि थुइ ॥ मीउसद्देणं सक्कच्छयाइ तो चेइए वंदे ॥ ए ॥ इति रात्रि प्रतिक्रमणे षडावश्यकानि ॥ २ ॥ अह पक्खियं चउद्दसी, दिणंमि पुव्वं व तच्छ देवसियं सुत्तं तं पडिक्कमिउ, तो सम्मं इमं कमंकुणइ ॥ १० ॥ मुहपोत्ती वंदणयं संबुध्दा खामणं तहा लोए ॥ वंदणपत्तेय खामणं च वंदणयमह सुत्तं ॥ ११ ॥ सुत्तं अब्नुघाणं, उस्सग्गो पुत्तिवंदणं तहयं ॥ पज्जंतिय खामणयं, तह चउरो छोन वंदणया ॥ १२ ॥ पुव्वविहिणेव सव्वं, देवसियं वंदणाइ तो कुणई ॥ सिज्ज सूरि उस्सग्गो, नेउ संतिथय पढणेय ॥ १३॥ एवं चिय चउमासे, वरिसे य जहक्कमं विहीणेउ ॥ पक्खचउमास वरिसे, सुनवरिनामंमि नाणच्छं ॥१ ४॥ तह उस्सग्गो जोआ, बारस (१२) वीसा (२०) समंगलचत्ता ॥ (४०) संबुध्दखामणत्ति पण सत्त साहूण जहसंखं ॥ १५ ॥ इति श्रीपाक्षिकादिप्रतिक्रमणषडावश्यकं संपूर्णम् ॥

इस उपरले पाठमें देवसिक प्रतिक्रमणका विधिमें चैत्यवंदना चार थुइकी करनी, श्रुतदेवता तथा क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करना और तीन थुइयों

कहनीयां कहीयां है. और राइ पडिक्कमणेके अंतमें चार थुइसें चैत्यवंदना करनी कही है. यद्यपि किसी किसी शास्त्रोक्त विधिमें सामान्य नामसें चैत्यवंदना करनी कही है. तहांजी प्रतिक्रमणेकी आद्यंतकी चैत्यवंदनामें चार थुइकी चैत्यवंदना जान लेनी क्योंकि उपर लिखे हूए बहुत शास्त्रोंमें विस्तारसें चारही थुइपूर्वक चैत्यवंदना करनी कही है. सर्व आचार्योंका एकही मत है. किसी जगे सामान्य विधि कहा है. और किसी जगे विस्तारसें विधिका कथन करा है.

सुज्ञ जन जवजीरूयोंकूं तो शास्त्रकी सूचना मात्रसेंही वोध होजाता है, तो जब बहु ग्रंथोंका लेख देखे तब तो तिनोंकों किंचित् मात्रजी कदाग्रह नही रहता है. इस वास्ते हम बहुत नम्रतापूर्वक रत्नविजयजी अरु धनविजयजीसें कहते हैंकि प्रथम तो आप किसी त्यागी गुरुके पास फेरके संयम लीजीए, अर्थात् दीक्षा लीजीए, पीछे साधुसमाचारी, जिनसमाचारी, जगच्चंद्रसूरिप्रमुख पूर्वपुरुषोंकों जिनकों तुमनेही अपने आचार्य माने हैं तिनकी तथा तिनोंके शिष्य परंपरायकी समाचारी मानो. यथाशक्ति

संयमतपमें उद्यम करो और जैनमतसें विरुद्ध जो तीन थुइकी प्ररूपणासें कितनेक जोले जव्य जीवोंकूं व्युद्ग्राही करा है. तिनोकों फेर सत्य सत्य जो चार थुइयोंका मत है सो कहकर समजावो, और उत्सूत्र प्ररूपणाका मिथ्या डुष्कृत देवो,तो अवश्यही तुमारा मनुष्य जन्म सफल हो जावेगा,नही तो जिन वचनसें विरुद्ध चलनेके लीये कौन जाने कैसी कैसी अवस्था यह संसारमें जोगनी पडेगी. सो ज्ञानीकों मालुम है, और आपने क्षयोपशम मुजब आपनजी जानते है.

प्रश्नः—प्रथम तुम हमकों यह बात कहोकि सम्यग्दृष्टी देवतादिकके कायोत्सर्ग करणेसें क्या लाज होता है? और किसि किसि शास्त्रमें सम्यग्दृष्टी देवतादिकोका मानना कायोत्सर्ग करना लिखा है, और किस किस श्रावक साधुने यह कार्य करा है, सो सब हमकूं समजावो॥

उत्तरः—श्रीपंचाशक सूत्रके एकोनविंशति पंचाशकाका पाठमें इसी तरेसें लिखा है, सो आपको लिख बताते है. तथाच तत्पाठः॥ किंच अस्सो वि अडिचित्तो, तहा तहा देवयाणिउएण॥ मुद्धजणाणहिउं ख

लु, रोहिणीमाई सुणेयवो ॥२३॥ व्याख्या। अन्यदपि अस्ति विद्यते चित्रं विचित्रं तप इति गम्यते तथा तेन तेन प्रकारेण लोकरूढेन देवतानियोगेन देवतोद्देशेन मुग्धजनानामव्युत्पन्नबुद्धिलोकानां हितं खलु पथ्यमेव विपयान्यासरूपत्वात् रोहिण्यादिदेवतोद्देशेन यत्तद्रोहिण्यादि मुणेयवोत्ति ज्ञातव्यं। पुल्लिंगता च सर्वत्र प्राकृतत्वादिति गाथार्थः॥देवता एव दर्शयन्नाह। रोहिणिअंबा तह मद, उस्सिया सवसंपया सोरका ॥ सुयसंति सुराकाली, सिद्धाइया तहा चेव ॥२४ ॥ व्याख्या। रोहिणी१ अंबा २ तथा मदपुल्यिका ३ सवसंपया सोरकत्ति ४ सर्वसंपत् ५ सर्वसौरव्या चेत्यर्थः॥ सुयसंतिसुरत्ति६ श्रुतदेवता ७ शांतिदेवता चेत्यर्थः॥ सुयदेवय संतिसुरा इति च पागन्तरं व्यक्तं। ८च काली ए सिद्धायिका इत्येता नव देवतास्तथा चैवेति समुच्चयार्थे संवाइया चेवत्ति पागन्तरमिति गाथार्थः ॥ ततः किमित्याह। एमाइ देवयाउ,पडुच्च अवउस्सग्गाउ जीवत्ती॥ णाणादेसए सिद्धा, ते सवे चेव होइ तवो॥ २५ ॥ व्याख्या। एवमादिदेवताः प्रतीत्यैतदाराधनायेत्यर्थ. ॥ अवउस्सग्गत्ति अपवसनानि अवजोपणानि वा। तुःपूरणे। ये चित्रा नानादेशप्रसिद्धास्ते सर्वे चैव नवंति

तप इति स्फुटमिति तत्र रोहिणीतपो रोहिणीनक्षत्र दिनोपवासः सप्तमासाधिकसप्तवर्षाणि यावत्तत्र च वासुपूज्यजिनप्रतिमाप्रतिष्ठा पूजा च विधेयेति। तथांबातपः पंचसु पंचमीष्वेकाशनादि विधेयं नेमिना थांबिकापूजा चेति ॥ तथा श्रुतदेवतातप एकादश स्वेकादशीषूपवासो मौनव्रतं श्रुतदेवतापूजा चेति । शेषाणि तु रूढितोऽवसेयानीति गाथार्थः ॥ अथ कथं देवतोद्देशेन विधीयमानं यथोक्तं तपः स्यादित्याशंक्याह ॥ जब कसायणिरोहो, बंन्नंजिणपूयणं अणसणं च ॥ सो सवो चेव तवो, विसेसउ मुद्धलोयंमि ॥ २६ ॥ व्याख्या ॥ यत्र तपसि कषायनिरोधो ब्रह्म जिनपूजनमिति व्यक्तं अनशनं च नोजनत्यागः सोत्ति तत्सर्वं नवति तपोविशेषतो मुग्धलोके। मुग्धलोको हि तथा प्रथमतया प्रवृत्तः सन्नन्यासात्कर्मक्षयोद्देशेनापि प्रवर्तते न पुनरादित एव तदर्थं प्रवर्तितुं शक्नोति मुग्धत्वादेवेति। सद्बुद्धयस्तु मोक्षार्थमेव विहितमिति बुद्ध्यैव वा तपस्यंति ॥ यदाह ॥ मोक्षायैव तु घटते विशिष्टमतिरुत्तमः पुरुष इति। मोक्षार्थघटना चागमविधिनैवालंबनांतरस्यानानोगहेतुत्वादिति गाथार्थः ॥ न चेदं देवतोद्देशेन तपः सर्वथा निष्फल

मैहिकफलमेव वाचरणहेतुत्वादपीति चरणहेतुत्व मस्य दर्शयन्नाह ॥ एवं पडिवत्तिए ए, त्तो मग्गाणु सारिन्नावाउ ॥ चरणं विहियं वहवे, पत्ता जीवा महान्नागा ॥ २७ ॥ व्याख्या ॥ एवमित्युक्तानां साधर्मिकदेवतानां कुशलानुष्ठानेषु निरुपसर्गत्वादि हेतुना प्रतिपत्त्या तपोरूपोपचारेण, तथा इत उक्त रूपात्कषायादिनिरोधप्रधानात्तपसः पाठांतरेण एवमु क्तकरणेन मार्गानुसारिन्नावात् सिद्धिपथानुकूलाध्य वसायाच्चरणं चारित्रं विहितमाप्तोपदिष्टं वहवः प्र नूताः प्राप्ता अधिगता जीवाः सत्त्वा महान्नागा म हानुन्नावा इति गाथार्थः ॥ तथा। सव्वंगसुंदरं तह, णिरुजसिहोपरमन्नूसणो चेव ॥ आयइजणणसो ह,ग्गकप्परुक्को तह माावि ॥ २७ ॥ पढिउ तवो वि सेसो, अम्मेहि वि तेहिं तेहिं सद्धेहिं ॥ मग्गपडिव वत्तिहेऊ, हं दिविणेयाणुगुणेणं ॥ २ए ॥ व्याख्या ॥ सर्वांगानि सुंदराणि यतस्तपोविशेषात्स सर्वांगसुंदर स्तथेति समुच्चये ॥ रुजानां रोगाणां अन्नावो नीरुजं तदेव शिखेव शिखा प्रधानं फलं तया यत्रासौ निरु जशिखा तथा परमाण्युत्तमानि नूपणान्यान्नरणानि यतोऽसौ परमन्नूपणं चेवेति समुच्चये। तथा आयति

मागामिकालेऽनीष्टफलं जनयति करोति योऽसावाय तिजनकस्तथा सौनाग्यस्य सुनगतायाः संपादने कल्पवृक्ष इव यः स सौनाग्यकल्पवृक्षस्तथेति समुच्चये अन्योऽप्यपरोपि उक्ततपोविशेषात्किमित्याह ॥ पठितोऽधीतस्तपोविशेषस्तपोनेदोऽन्यैरपि ग्रंथकारैस्तेषु तेषु शास्त्रेषु नानाग्रंथेष्वित्यर्थः ॥ नन्वयं पठितोपि सानिष्वंगत्वान्न मुक्तिमार्ग इत्याशंक्याह ॥ मार्गप्रतिपत्तिहेतुः शिवपथाश्रयणकारणं यश्च तत्प्रतिहेतुः स मार्ग एवोपचारात्कथमिदमिति चेडुच्यते ॥ हंदीत्युपप्रदर्शने विनेयानुगुण्येन शिक्षणीयसत्वानुरूप्येण नवंति हि केचित्ते विनेया ये सानिष्वंगानुष्ठानप्रवृत्ताः संतो निरनिष्वंगमनुष्ठानं लनंत इति गाथाद्वयार्थः ॥

इस पाठकी नाषा लिखते है ॥ अन्नोवि इत्यादि गाथा ॥ व्याख्या ॥ अन्य प्रकार पूर्वोक्त तपके स्वरूपसें अन्यतरेकानी विचित्र प्रकारका तप है तिस तिस प्रकार लोक रूढी करके देवताके उद्देश्य करके नोले अव्युत्पन्न बुद्धिवाले लोकोंको विषयान्यास रूप होनेसें हित पथ्ये सुखदाइही है. रोहिणी आदि देवतायोंके उद्देश करके जो तप करते है. तिसको रोहिणी आदि तप जानना. इति गाथार्थः ॥

अब देवताही दिखाते हूए कहते हैं ॥ रोहिणी त्यादि गाथाकी व्याख्या ॥ १ रोहिणी, २ अंबा, तथा ३ मदपुत्थिका, ४ सर्वसंपत् ५ सौख्या ॥ सुयसंति सुरत्ति ॥ ६ श्रुतदेवता, ७ शांतिदेवता, ८ काली, ९ सिद्धायिका, ए नव देवीयों हे इति गाथार्थः ॥

एमाइ इत्यादि गाथाकी व्याख्या ॥ इत्यादि देवता कों अश्रित तिनकी आराधनाकेवास्ते अपवसन अपजोपण करना ये नानादेशमें प्रसिद्ध हैं. ये सर्व तपविशेष होते हैं. तिनमेंसें रोहिणीतप रोहिणीनक्षत्रके दिनमें उपवास करे, इसतरें सात वर्ष सात मासाधिक तप करे और श्रीवासुपूज्य तीर्थंकर नगवंतके प्रतिमाकी प्रतिष्ठा अरु पूजा करे. इति रोहिणी तप ॥ १ ॥

तथा अंबातप ॥ पांच पंचमीमें एकाशनादि करना, और श्रीनेमिनाथजीकी तथा अंबिकाकी पूजा करें २

तथा श्रुतदेवताका तप ॥ इग्यारे एकादशीयोंमें उपवास मौनव्रत करे और श्रुतदेवताकी पूजा करे, शेषतपविधि रूढीसें जान लेनी ॥ इति गाथार्थः ॥

अथ किसतरें देवताके उद्देश करके विधीयमान यथोक्त तप होवे, ऐसी आशंका लेकर कहते हैं.

जह कसाय इत्यादि गाथाकी व्याख्या ॥ जिस तपमें कषायका निरोध होवे, ब्रह्म जिन पूजन होवे, और अशनन्नोजनका त्याग होवे,सो सर्व तप न्नोले लोकोंमें होता हैं, क्योंकि न्नोले लोक प्रथम ऐसे तपमें प्रवृत्त हूए न्नये अन्यासके बलसे पीछे कर्मक्षयके करने वास्तेन्नी तप करनेमें प्रवृत्त होते है. परंतु आदिहीसें कर्मक्षय करण वास्ते न्नोले होनेसें प्रवृत्त नही होते है.

और जो सद्बुद्धिवाले है वे तो चाहो पूर्वोक्त कोइन्नी तप करे सो सब मोक्षके वास्तेही करते है, यदाह ॥ उत्तम पुरुषोंकी जो मति है सो मोक्षार्थ मेंही घटे है, और मोक्षार्थकी जो घटना है सो आगमके विधि करकेही है. क्योंके आगम सिवाय जो वे आलंबन करते हैं, सो सब अनान्नोग हेतुक है ॥ इति गातार्थ ॥

ऐसें न कहना के देवताके उद्देश करके जो तप करणा सो सर्वथा निःफलही है, अथवा इस लोकाही फल है, किंतु चारित्रकान्नी हेतु है. अब यह तप जैसें चारित्रका हेतु है ? सो दिखाते है ॥

एवं पडिवत्ति इत्यादि गाथाकी व्याख्या ॥ ऐसें उक्त साधर्मिक देवतायोंका कुशल अनुष्ठानमें निरुप

सर्गतादि हेतु करके, प्रतिपत्ति तप रूप उपचार करके, तथा इस उक्त रूपसें कषायादि निरोध प्रधान तपसें, पाठांतर करके ऐसे उक्तकरण करके, मार्गानुसारी होनेसें, सिद्ध पंथके अनुकूल अध्यवसायसें, " चरणं चारित्रं "आप्तका कथन करा हूआ चारित्र संयम बहुत महानुन्नाव जीवोंकों पूर्वकालमे प्राप्त हूआ हे. इति गाथार्थः ॥

तथा सर्वंगसुंदरं इत्यादि दो गाथाकी व्याख्या ॥ सर्वांग सुंदर हे जिस तप विशेपसें सो सर्वांग सुंदर तप. यहां तथा शब्द जो है सो समुच्चयार्थमें है. तथा जो रुजाणां रोगोंका अन्नाव होना उनकों निरुज कहेना सोइ शिखाकी तरें शिखा प्रधान फल करके जिहां है सो निरुजशिखातप जानना. तथा परमोत्तम नूपण आन्नरण होवें जिससेंती सो परम नूपण तप जानना. चकार समुच्चयार्थमें है. तथा जो आगमिक कालमें मनवंछित फलकी सिद्धि करें सो सौन्नाग्य कल्पवृक्ष तप जानना.

इस उक्त तपसें अरु अन्य प्रकारके तपसें क्या फल होवे सो बतलाते हे. कहे हें जो तपके नेद

विशेष अन्य ग्रंथकार आचार्योंने तिन तिन नाना प्रकारके ग्रंथोमें इत्यर्थः ॥

इहां वादी प्रश्न करता हैकि यह तुमारा तप वांछासहित होनेसें मुक्तिका मार्गमें नही होता है.

इसका उत्तर कहतेहैं. यह पूर्वोक्त वांछा सहित तप जो है सो मोक्ष मार्गकी प्राप्ति होनेमें कारण है, जो मोक्षमार्गकी प्रतिपत्तिका हेतु है. सो मोक्ष मार्ग ही उपचारसें है.

पूर्वपक्षः—यहपूर्वोक्त तपसें कैसें मोक्ष मार्ग हो शक्ता है?

उत्तरः—शिक्षणीय जीवके अनुरूप होने करके हो शक्ता है. क्योंकि कितनेक शिष्य प्रथम वांछासहित अनुष्ठानमें प्रवृत्त हूए होए "निरभिष्वंग" अर्थात् वांछारहित अनुष्ठानकों प्राप्त होते है. इति गाथाद्वयार्थः ॥

अब भव्य जीवोंकों विचारना चाहियें कि जब श्रावक श्राविकायोंकों रोहिणी अंबिका प्रमुख देवीयोंका तप करणा और तिनकी मूर्त्तियोंकी पूजा करनी शास्त्रमें कही है. और तिनके आराधनके वास्ते तप करणा कहा है, अरु सो तप उपचारसें मोक्षका मार्ग कहा है. तो फेर जो कोइ मताग्रही शासनदेवताका का

योत्सर्ग्ग अरु थुइ कहनी निषेध करता है तिसकों श्रीजैनधर्मकी पंक्तिमें क्योंकर गिनना चाहीयें, अर्थात् नहीज गिनना चाहीयें. क्योंकि जैनमतमें सर्वसमान श्रीहरिभद्रसूरिकृत पंचाशक सूत्रका मूल, और नवांगी वृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिकृत पंचाशककी टीकामें तप करके सम्यग्दृष्टी देवतायोंके प्रतिमाकी पूजा करनी ऐसा प्रगटपणे कहा है. तो ऐसे श्रीहरिभद्रसूरि और अभयदेवसूरि जो यह पंचम कालमें सकल शास्त्रोंके पारंगामी थें, जो संपूर्ण श्रुतज्ञानी कहाते थे तिनो महा पुरुषोंका वचन जो न माने तो क्या तिस अज्ञ जीवकों समजाने वास्ते श्रीमहाविदेह क्षेत्रसें कोइ केवलज्ञानके धरने वाले केवली भगवान् आवेगा? हम बहुत दिलगिरीसें लिखते हैंकि यह जो तुम नवीन मतका अंकूर उत्पन्न करनेकी चाहना रखते हो की सम्यग्दृष्टी देवतादिकका कायोत्सर्ग्ग न करना अरु थुइयांभी न कहनीयां सो किस शास्त्रमें ऐसा लेख देख कर कहते हो? किस शास्त्रमें ऐसा पाठ लिखा हैकि सम्यग्दृष्टी देवतायोंका कायोत्सर्ग्ग करनेसें अरु इनोकी थुइयां कहनेसें पाप लगता है? सो हमकों बतादो.

जेकर तुम कहोगेकी नोले श्रावकोंकों पूर्वोक्त देवतायोंका तप करना, और पूजन करना कहा है, परंतु तत्त्ववेत्ता श्रावककों तो नही कहा है.

तिसका उत्तरः—हे नव्य यहां तत्त्ववेत्तायोंकोंनी पूर्वोक्त देवतायोंका तपादि करना निषेध नही करा है. किंतु इस लोकके अर्थ न करना, परंतु मोक्षके वास्ते करे तो निषेध नही. ऐसा कथन है. जेकर आवश्यक वंदित्तुं सूत्रमें ॥ सम्मदिठ्ठी देवा, दिंतु समाहिं च बोहिं च ॥ इस पाठकी चर्चा हम उपर लिख आए है. यह पाठ तो तत्त्ववेत्ता श्रावककोंनी प्रायें नित्य पठनेमें आता है. इस वास्ते धर्मकृत्योंमें विघ्न दूर करनेकों, पूर्वोक्त देवतायोंका तप, पूजन, कायोत्सर्ग अरु थुइ कहनी जानकार श्रावकोंको करनी चाहियें यह सिद्ध हूआ.

तथा नोले श्रावकोंकोंनी पूर्वोक्त देवतायोंका तप करना, पूजन करना, यहनी मोक्ष मार्गही कहा है इस वास्ते धर्मानिरुची जनोंकों किसी अज्ञ जनके जूठे वचन सुनकर हगाग्रही होना न चाहियें, क्यों कि यह हूंमा अवसर्प्पिणी कालमें पूर्वेनी जो आज यह जैनमतमें बहोत बहोत मत दिखनेमें आता है

सो सव अैसेही कदाग्रही जिनोसें निकला है जिस्सें आज सेकडा मत प्रचलित हो रहा है क्योंकि किस विकारी पुरुषने जो अपने माहापण चतुराइ वताने के वास्ते सौ पच्चास आदमीकी सन्नामें वात निकालीकि यह अमुक वात इसी रीतीसें चलनी चाहियें अैसा शास्त्रों देखनेसें मालुम होता है इसीतरेकी कोइ वात उनके मुखमेंसें निकली गइ तो फेर उस वातकों सिद्ध करनेके वास्ते उक्त पुरुषके मनमें हजारों कुयुक्तियों उत्पन्न होती है पीछे उसकों कुछ सत्यासत्य नापण करनेका नानही रहता नही है. उनकों यहही विकार अपने हृदयमें नरपूर हो रहेता हैकि किसीतरेन्नी मेरा वचन सत्य करके सिद्ध करना चाहीयें परंतु कुयुक्ति करनेसें मेरा जनम विगड जावेगा ऐसा विचार उनकों किंचित् मात्रन्नी आता नही है, वो अपना कथन सत्य करनेका हठ कन्नी छोडता नही. ऐसीही उनकी प्रकृति हो जाती है ऐसा होनेसेंही दिगम्बर और ढूंढीयें प्रमुख वहुत मनकल्पित मतों प्रचिलत हो गया है. कितनेक लो कन्नी ऐसेही होताहैकि जिसके वचन पर उनको विसवास वैठ गया तो फेर वो चाहो जूठ हो चाहो

सच्चा हो परंतु वो लोकतो उनकेही वचनके अनुजाइ चलते है तिस्सें फेर वो हठ्याही, पुरुषकोंभी मजबुत नाद लग जाता हैकि अब मेरी बातही सिद्ध करके लोकोंमें चलानी चाहियें जेकर मेरेकों लोक भी कहेंगेंकी यह खरा तत्त्ववेत्ता, अरु शास्त्रशोधक है, देखो, बडे बडे आचार्योंकी भूलभी यह पुरुषने दिखायदीनी! यह कैसा विद्वान,शास्त्रज्ञ है! ऐसें ऐसें विकल्प उनके हृदयमें हर हमेस हो रहता है तिस्सें जिनवचन उत्थापन करनेका भय तो उसको रहता ही नही है. इसी वास्ते हम श्रावक भाइयोंको सत्य सत्य कहते हैं कि अपने जैनमतमें बहोत पंथ प्रचलित हो गया है तो अब कोइ अपना नाम रखनेकें लीये नवीन पंथ निकालनेका उपदेश करे तो आप नही सुनोगे अरु कोइ विकारी जनोके कथनसें पूर्वाचार्योंके कहे कथनोको तोड फोड करनेकी कुयुक्तियों करके जूठ हठ नही करोगें तो, अब अपने जैनमतमें कोइभी नवीन तिखल करे जिस्सें ढुंढकोंकी तरे बहुतजनो दुर्गतिका अधिकारी हो जावे ऐसा दुराग्रही फितुर होनेका भय मिट जावेगा. अरु जूठ कथन उपदेशक विकारी जनोकोंभी हमारा यह क-

हना है की आपनी परनवमें इस्स कदाग्रहसें डुःख प्राप्त होवेगा अैसी नीती रखकर श्रीजिनवचनोंके पर श्रद्धान ला कर कदाग्रह गेड द्यो, खरा सम जवान हो तो यह एकनवमें अपना मुखसें जो जूगा बोल निकल चूका तिसका मिह्यामिडुक्कड सवज नोंकें सम्मत देनेसें जो मानन्नंग होनेका डुःख तुमकों लगता है तिसकों सुख रूप समज क्योंकि आगें संसार तरना सुलन्न हो जावेगा. यह वडा फायदा होवेगा. यही वात अपने हैयेमें दृढ करो, अरु यह नवमेंन्नी मिह्यामि डुक्कड देनेसें विवेकीजनोंकें हृदयमें तो तुम महापुरुषोंकी न्याइ वस जावेगें. क्योंकि जो प्रायश्चित्त लेकर आपना पापोंकी शुद्धि करता है तिसकों चतुर लोक तो वडे पंमितोसेंन्नी अधिक गिनते है तो फेर खरा विचार करो तो यह नवमेंन्नी कुछ मानन्नंग नही होता है परंतु महत्त्व पणेकी प्राप्ति होती है. इसीतरें सत्य विचार करणे वाले पुरुषोंकों तो सव वात सुलन्नही होती है. तो फेर वहोत कहा कहना.

तथा सिद्धराज जयसिंहके राज्यमें जिने कुमुदचंद्र दिगम्वरकों जीता, तथा जिने तेतीस हजार मिथ्या दृष्टीयोंकें घरोको प्रतिवोध किया, तथा जिने चोरा

सौ सहस्र श्लोक प्रमाण स्याद्वादरत्नाकर ग्रंथकी रचना करी, ऐसे सुविहित चक्र चूडामणी श्रीदेव सूरिजी हूआ, तिनोका रचेला जीवानुशासननामा प्रकरण है. तिस प्रकरणकी टीका श्रीउत्तराध्ययन सूत्रकी वृत्तिके करनेवाले श्रीनेमिचंद्रसूरिजीने करी है फेर उस टीकाकों श्रीजिनदत्तसूरिजीने शोधि है, यह कथन यही पुस्तकके अंतमें ग्रंथकारोंनेही लिखा है यह ग्रंथ अब अणहिलपुर पाटणके नांमभागारमें मोजूद है, तिसका पाठ नव्यजीवोको संशयमें पाडनेवालेका कदाग्रह दूर करनेकेवास्ते यहां लिखते है. यह पाठ जो नही मानेगा तिसकों चतुर्विध श्रीसंघने दीर्घ संसारी जान लेना. तथाच तत्पाठः ॥ तह बंभ संति माइण, केइ वारिंति पूयणाईयं ॥ तत्त जउ सिरिहरिभ,दसूरिणोणुमयमुत्तं च ॥ए०१॥ व्याख्या ॥ तथेति वादांतरभणनार्थौ ब्रह्मशांत्यादीनां मकारः पूर्ववत् आदिशब्दादंबिकादिग्रहः केऽप्येके वारयंति पूजनादिकमादिग्रहणाल्लेपतदौचित्यादिग्रहः तत्पूजादिनिषेधकरणं नेति निषेधे यतो यस्मात् श्रीहरिभद्रसूरेः सिद्धांतादिवृत्तिकर्तुरनुमतमभीष्टं तत्पूजादिविधानं उक्तं च भणितं च पंचाशके इति गाथार्थः ॥

तदेवाह ॥ साहंमिया य एए, महड्डिया सम्मदिठिणो जेण ॥ एतोच्चिय उचियं खलु, एएइसिंच्छ पूयाई॥ प्रतीतार्था ॥ न केवलं श्रावका एतेपामिद्धं कुर्वंति यतयोऽपि कायोत्सर्गादिकमेतेषां कुर्वंतीत्याह। विग्घविघायणहेउं, जइणो वि कुणंति हंदि उस्सग्गं। खित्ताइ देवयाए, सुयकेवलिणा जउ जणियं १००१ व्याख्या। विघ्नविघातनहेतोरुपद्रवविनाशार्थं यतयोपि साधवोपि न केवलं श्रावकादय इत्यपिशब्दार्थःाकुर्वंति विदधति हंदीति कोमलामंत्रणे उत्सर्गं कायोत्सर्गं क्षेत्रादिदेवताया आदिशब्दाजवनदेवतादिपरिग्रहः श्रुतकेवलिना चतुर्दशपूर्वधारिणा यतो यस्माद्भणितं गदितमिति गाथार्थः। तदेवाह चाउम्मासियवरिसे,उस्सग्गो खित्तदेवयाए य ॥ पक्खियसेज्जसुराए, करिंति चउमासिए वेगे ॥१००२॥ गतार्था ॥ ननु यदि चतुर्मासिकादिन्नणितमिदं किमिति सांप्रतं नित्यं क्रियत इत्याह संपइ निच्चं कीरइ. संनिज्झा जावउ विसिठाउ ॥ वेयावच्चगराणं, इत्ताउ वि बहुयकालाउ ॥१००३॥ व्याख्या। सांप्रतमधुना नित्यं प्रतिदिवसं क्रियते विधीयते कस्मात् सांनिध्याजावस्तस्य कारणाद्विशिष्टादतिशायिनो वैयावृत्त्यकराणां प्रतीतानामित्याद्यपि न केवलं

कायोत्सर्गादीत्यपेरर्थः । आदिग्रहणात्संतिकराणामि त्यादि दृश्यं प्रभूतकालात् बहोरनेहस इति गाथार्थः। एवं स्थिते किं कर्तव्यमित्याह । विग्घविघायणहेउं, चेईहररक्कणाय निच्चं वि ॥ कुज्जा पूयाईयं, पयाणं धम्मवं किंचि ॥१००४॥ व्याख्या ॥ विघ्नविघातनहेतो रुपसर्गनिवारकत्वेन आत्मन इति शेषः ॥ चैत्यगृ हरक्षणाच्च देवभवनपालनात् नित्यमपि सर्वदा न केवलमेकदेत्यपिशब्दार्थः। कुर्याद्विदध्यात् पूजादिकमा दिशब्दात्कायोत्सर्गादिका एतेषां ब्रह्मशांत्यादीनां धर्मवान् धार्मिकः। अयमभिप्रायः। यदि मोक्षार्थमेतेषां पूजादि क्रियते ततो दुष्टं विघ्नादिवारणार्थं त्वदुष्टं तदिति किंचेत्यभ्युच्चय इति गाथार्थः । अभ्युच्चयमेवा ह मिच्छगुणजुयाणं, निवाइयाणं करेति पूयाइं ॥ इह लोय कए सम्मत्त, गुण जुयाणं नउण मूढा ॥१००५॥ व्याख्या ॥ मिथ्यात्वगुणयुतानां प्रथमगुण स्थानवर्तिनां नृपादीनां नरेश्वरादीनां कुर्वंति पूजा दि अभ्यर्चननमस्कारादि इह लोककृते मनुष्यजन्मो पकारार्थं सम्यक्त्वसंयुतानां दर्शनसहितानां ब्रह्म शांत्यादीनामिति शेषः । न पुनर्नैव मूढा अज्ञा निन इति गाथार्थः ॥

अब इस पाठकी भाषा लिखते है ॥ तह्वंभसंति इत्यादि गाथाकी व्याख्या ॥ तथा शब्द वादांतरके कहनके लीये है. ब्रह्मशांत्यादिका मकार पूर्ववत्, आदिशब्दसें अंबिकादि ग्रहण करणे, कितनेक इन की पूजनादिकका निषेध करते है. आदि शब्द ग्रह णसें शेष तिनके उचितका ग्रहण करना. तिनकी पूजाका निषेध करना योग्य नही है, क्योंके सिद्धां तादि महाशास्त्रोंकी वृत्तिके करणेवाले श्रीहरिभद्र सूरिजी महाराजकों ब्रह्मशांति आदिककी पूजा उचि तकृत्य सम्मत है. इनोने श्रीपंचाशकजीमें इनका कथन करा है. इति गाथार्थः ॥ सोइ कहते है.

साह्म्मिया इत्यादि गाथाकी व्याख्या ॥ यह शा सन देव जो है. सो सम्यग्दृष्टि है, महा ऋद्धिमान् है, साधर्मिक है, इसवास्ते इनकी पूजा कायोत्स र्गादि उचित कृत्य करना श्रावकोंको योग्य है. केवल श्रावकोनेही इनोकी पूजादिक करणी ऐसें नही सम जनां किंतु साधु संयमीभी इनोका कायोत्सर्ग क रते है सोइ कहते है ॥

विग्घविघायण इत्यादि गाथा १००१ की व्या ख्या ॥ विघ्नविघात सो उपद्रवरूप विघ्नोके विनाश

करणेके लीये यति साधुन्नी क्षेत्रदेवता आदिकका कायोत्सर्ग्ग करते है. आदिशब्दसें नवनदेवतादिकका ग्रहण करना. इसवास्ते निःकेवल श्रावकोनेही इनो का कायोत्सर्ग्ग करणा ऐसा नही समजना. अपितु साधुन्नी करते है. यह अपिशब्दका अर्थ है. क्योंकी पूर्वोक्त कायोत्सर्ग्ग करणे यह कथन श्रुतकेवली श्रीन्नद्रबाहु स्वामीने कहे है. इति गाथार्थः ॥ सोइ कहते है.

चाउम्मासि इत्यादि गाथा १००२ की व्याख्या ॥ चातुर्मासीमें, सांवत्सरीमें, क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग्ग करणा, और पाक्षीमें नवनदेवताका कायोत्सर्ग्ग करणा, एकैक आचार्य चातुर्मासीमेंन्नी नवनदेवताका कायोत्सर्ग्ग करते है. इति गाथार्थः ॥

पूर्वपक्षः—ननु इति प्रश्ने. जेकर चातुर्मास्यादिकमें क्षेत्रदेवादिकका कायोत्सर्ग्ग करना श्रीन्नद्रबाहुस्वामीजीने कहा है तो फेर क्यों कर अब संप्रतिकालमें नित्य कायोत्सर्ग्ग करते हो. इस प्रश्नका उत्तर ग्रंथकारही देते है.

संपइ इत्यादि गाथा १००३ व्याख्या ॥ सांप्रत कालमें नित्य दिनप्रति जो क्षेत्रदेवतादिकका

कायोत्सग्गं करते है तिसका कारण यह है की सांप्रतकालमें तिन देवताके सांनिध्याभावसें अर्थात् पूर्व कालमें यदा कदा एकवार कायोत्सग्गं करणेसें वे देव वे शासनकी प्रभावना निमित्त उपद्रवनाशनादि करते थे,और सांप्रतकालमें कालदोषसें यदा कदा कायोत्सग्गं करनेसें वे देव वे सांनिध्य नही करते है,इस वास्ते तिनकों नित्य प्रतिदिन कायोत्सग्गं द्वारा जागृत करे हूए सांनिध्य करते है. इसवास्ते नित्य कायोत्सग्गं करते है. तिस नित्य कायोत्सग्गंके करणेसें विशिष्ट अतिशयवान् वैयावृत्त्यकरादि देव जो है सो जागृत होते है. निःकेवल वैयावृत्त्य करनेवाले प्रसिद्ध देवताका कायोत्सग्गंही नही करते है. किंतु शांतिकराणं इत्यादिकोंकाभी ग्रहण करना. तथा प्रभूतकाल अर्थात् बहुत दिनोसें पूर्वधरोके समयसें इन पूर्वोक्त देवतायोंका नित्य प्रतिदिन पूर्वाचार्य कायोत्सग्गं करते आए है. इस वास्ते पूर्वोक्त देवतायों का नित्य कायोत्सग्गं करते है. इति गाथार्थः ॥

ऐसें स्थित सिद्ध हूए तो फेर क्या करना चाहियें सो कहते है विग्घविघायण इत्यादि १००४ गाथा की व्याख्या ॥ विघ्नविघातके वास्ते आत्माके उपस

र्गनिवारक होनेसें, और श्रीजिनमंदिरकी रक्षा करनेसें, देवद्रवनकी पालना करनेसें, नित्यप्रति इन देवतायोंकी पूजा करनी चाहियें. आदिशब्दसेंदिन प्रतिदिन तिन देवतायोंका कायोत्सर्ग करना चाहियें. किनकों करना चाहियें? धर्मिजनोकों करना चाहियें. यहां अभिप्राय यह हैकी जेकर मोक्षके अर्थें इन पूर्वोक्त देवतायोंकी पूजादि करे जबतो अयुक्त है. परंतु विघ्न निवारणादिकके निमित्त करे तो कुछभी अयुक्त नही है. उचित प्रवृत्तिरूप होनेसें पूजा, कायोत्सर्ग करना युक्तही है. किंच शब्द अभ्युच्चयार्थमें है ॥ इति गाथार्थः ॥

अभ्युच्चय शेष कहने योग्य जो रहा है सोइ कहते है ॥ मिछत्त गुण इत्यादि १००५ गाथाकी व्याख्या ॥ मिथ्यात्वगुणसहित प्रथम गुणस्थानमें वर्त्तने वाले ऐसे नरेश्वर जो राजादिकों है तिनकों जो पूजा नमस्कारादिक करते है सो तो इस लोकके प्रयोजन वास्ते करते है. परंतु सम्यक्त्वसहित सम्यक्दृष्टि ब्रह्मशांत्यादि देवतांकी पूजा, नमस्कार कायोत्सर्गादि जो करते है, सो कुछ मूढ अज्ञानी नही करते है. इति गाथार्थः ॥

अब इस जीवानुशासन ग्रंथके लेखकों जो कोइ हठ ग्राही, अनंतसंसारी, मिथ्यादृष्टि, डुर्लनबोधी जीव न माने तो उसकों जैनसंप्रदायवाले क्योंकर जैनी कहेगा? जेकर उन्ने अपने मुखसें आपकों जैनी नाम ठहराय रखा तिस्सें क्या वो जैन बन गया. श्री वीतरागके वचनोपर श्रद्धान होने सिवाय जैन नही हो सकता है.

पूर्वपक्षीका प्रश्नः–हमने रत्नविजयजी अरु धन विजयजीके मुखसें अैसा सुनाहे कि हमतो सिद्धां तोंकी पंचांगी मानते है. परंतु अन्य प्रकरणादि कु छनी नही मानतें है.

उत्तरः– अैसा मानना इनोका बहोत बेसमजी का हे क्योंकि श्रीअनयदेवसूरिजीने श्रीस्थानांग सू त्रकी वृत्तिमें श्रुत ज्ञानकी प्राप्तिके सात अंग कहे हैं तद् यथा ॥ १ सूत्र, २ निर्युक्ति, ३ नाष्य, ४ चूर्णि, ५ वृत्ति, ६ परंपराय, ७ अनुनव, यह लेखसें जब पंचागीमें पूर्वाचार्योंकी परपरा माननी कही है, और तिसकोंनी रत्नविजयजी अरु धनविजयजी अ पने मनःकल्पित नवीन पंथ निकालनेका इरादा पूर्ण करनेके वास्ते नही मानते हैं, तबतो इनकों पंचांगी

मानने वालेभी किसतरेंसें सुज्ञजन कह सकते है ? क्योंकी श्रीस्थानांग सूत्रकी वृत्ति यहभी सूत्रोंका पांच अंगमेंसें एक अंग है तो फेर वृत्तिमें करा हूआ कथनभी इनोकों माननेमें जब अनुकूल नही होता है तब तो जिस कथनसें इनोंका मत सिद्ध हो जावे वो कथन जिस ग्रंथमें होवे तिस कथनकोंही मानो परंतु उसी ग्रंथमें इनोका मत तोडनेवाला कथन होवे, वो कथन नही मानना चाहियें ! इसी तरें जो ढूंढीयोकी माफक जहां अपनेकों अनुकूल होवे सो बचन सत्य और जो अपनेकों प्रतिकूल होवे सो बचन असत्य कह देनेके तुल्य वाणी बन जाती है.

हमारा कहना यह है की कुतर्क करनेवाला, शास्त्रकारोंका लेखकों जुठा ठहराने वास्ते कोट्यावधि कुयुक्तियों करो, परंतु महागंभीर आशयवाले अरु समुद्र जैसी बुद्धिवाले पूर्वाचार्योंने जो शास्त्रोंकी रचना करी है तिनोका अस्खलित वचनका किसी कुतर्की तुछमति वाले लोकोसें पराभव नही हो सक्ता है, किंतु पराभव करने वाला आपही आपसें स्खलन हो जाता है. जो शास्त्रोंकी अपेक्षा छोडके अपनी कुयुक्तियोंसें नवीन मत निकालनेका उद्यम करनेको

चाह्ना रखता है उसका बोल असंमजस मूर्खोंके टोलेमें तो इच्छामाफक कन्नी प्रमाणन्नी होजावे परंतु विवेकी जनोके आगे तो अत्यंत निस्तेज हो जाता है. जुग कन्नी सच्चा नही होता है.

अब इनोके कहे मुजब पंचांगी माननेसें तो श्रुत देवता, क्षेत्र देवता अरु नवनदेवताका कायोत्सग्गादिकका करना सिद्ध नही होता है परंतु हम सत्य कह देते है कि इनोने जो यह समज अपने दिलमें निश्चित करके रखा है सोन्नी इनोकी असत्य कल्पनाही जान लेनी परंतु सापेक्ष कल्पना नही है हम पंचांगीके पाठसेंही पूर्वोक्त देवतायोंका कायोत्सर्ग करना प्रमाण है ऐसा सिद्ध कर देते हैं.

तिसमें प्रथम तो श्रीआवश्यक सूत्रकी निर्युक्ति, चूर्णि ओर टीकाका प्रमाण लिखते हैं ॥ चाउम्मासि य वरिसे, उस्सग्गो खित्तदेवयाए य ॥ पक्खिय सिज्ज सुराए, करेंति चउमासिए वेगे ॥ १ ॥ अस्य व्याख्या ॥ चाउ० ॥ क्षेत्रदेवतोत्सर्गं कुर्वंति ॥ पाक्षिके शय्यासुर्याः ॥ केचिच्चातुर्मासिके शय्यादेवताया अप्युत्सर्गं कुर्वंति ॥ न्नाषा ॥ कितनेक आचार्य चातुर्मासी तथा संवत्सरिके दिनमें क्षेत्रदेव

ताका कायोत्सर्ग्ग करते है. और पाक्षीमें नवन देवताका कायोत्सर्ग्ग करते है, अरु कितनेक चातुर्मासिके दिनमें नवनदेवताका कायोत्सर्ग्ग करते है. इति गाथार्थः ॥

इस पावमें नवनदेवता और क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग्ग करना कहा है. जेकर रत्नविजय, धनविजयजी कहेगे कि यहतो हम मानते है. परंतु नित्य प्रतिदिन श्रुतदेवता और क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग्ग करना नही मानते है.

उत्तरः—पंचवस्तु शास्त्रमें श्रीहरिन्नद्रसूरिजीने श्रुतदेवता अरु क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग्ग करना कहा है तिसका पावनी उपर लिख आये है तो फेर तुम क्यों नही मानते हो? जेकर प्रतिदिन क्षेत्रदेवता और श्रुतदेवताका कायोत्सर्ग्ग करनेसें मिथ्यात्व किंवा पाप लगता है तो फेर पक्षी, चातुर्मासी अरु सांवत्सरी रूप महा पर्वोंके दिनोमें पूर्वोक्त कायोत्सर्ग्ग करनेसेंनी महामिथ्यात्व और महा पाप तुमकों लगना चाहियें. तो आप विचारोकि अन्य दिनोमें जो पाप न करे सोही पुरुष निरवद्य महापर्वोंके दिवसोंमें तो अवश्यमेव पाप कर्म करें

तब तिसकों मिथ्यादृष्टि, महा अधम अज्ञानी कह
ना चाहियें इतना तो तुमभी जानते होवेंगे, यह
बातका जो आप तादृश विचारपूर्वक ख्याल रखो
गे तो प्रतिदिन श्रुतदेवता, क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग
निषेध करणा यह बहोत अयोग्य है ऐसा आपही स
मज जावेगें, हमकोंभी समजानेकी जरुर नही पडेगी.

प्रश्न—श्रुतदेवताके कायोत्सर्ग करणेसें क्या
लाभ होता है?

उत्तरः—इनके कायोत्सर्ग करनेसें महालाभ
होता है यह कथन श्रीआवश्यक सूत्र जो तुम
मानते हो तिसमेंही करा है सो पाठ यहां लिखते
हैं सुयदेवयाए आसायणाए ॥ व्याख्या श्रुतदेवतायाः
आशातनयाः क्रिया तु पूर्ववत्। आशातना तु श्रुतदे
वता न विद्यते अकिंचित्करी वा। न ह्यनधिष्ठितो
मौनींद्रः खल्वागमः अतोऽसावस्ति नचाकिंचित्करी
नामालंब्य प्रशस्तमनसः कर्मक्षयदर्शनात् ॥

अब इनकी भाषा लिखते हैं. श्रुतदेवताकी आशा
तना ऐसें होती है कि जो कहे श्रुतदेवता नही
है अथवा जेकर है तो कुछभी नही कर शक्ति है
ऐसें कहनेवाला आशातना करने वाला है क्योंकि

श्रीजगवंतके कहे आगम अनधिष्ठित नही है इस वास्ते श्रुतदेवताकी अस्ति है. श्रुत देवता " अकिंचित्करी " ऐसा कहना मिथ्या है. क्योंकि जो कोइ श्रुतदेवताका आलंबन करके कायोत्सर्गादि करता है तिस्के कर्मक्षय होते है. इस वास्ते श्रुतदेवताकी आशातना त्यागके चतुवर्णसंघको कर्मक्षय करणे वास्ते अवश्यमेव प्रतिदिन श्रुतदेवताका कायोत्सर्ग करना और थुइजी अवश्य कहनी चाहियें.

प्रश्नः—सम्यग्दृष्टि वैयावृत्त्यादि करनेवाले देवतायोंका कायोत्सर्ग करना और चोथी थुइमें तिनकी स्तुति करणी तिस्सें क्या फल होता है.

उत्तरः—पूर्वोक्त कृत्य करनेसें जीव सुलजबोधि होनेके योग्य महा शुजकर्म उपार्जन करता है. और तिनकी निंदा करनेसें जीव डुर्लजबोधि होने योग्य महा पापकर्म उपार्जन करता है. ऐसा पाठ श्रीठाणांग सूत्र जिसकों रत्नविजयजी, धनविजयजी मान्य करते है तिसमें है सो इहां लिख देते है ॥ पंचहिं ठाणेहिं जीवा डुल्लजबोहियत्ताए कम्मं पकरेंति तं जहा अरहंताणमवन्नं वदमाणे अरिहंतपन्नत्तस्स धम्मस्स अवन्नं वदमाणे आयरियउवज्ञायाणं अवन्नं वदमाणे

चउवन्नसंघस्स अवन्नं वदमाणे विविक्कतववंनचेराणं देवाणं अवन्नं वदमाणे पंचहिं गणेहिं जीवा सुलन्न वोहियत्ताए कम्मं पकरेंति अरहंताणं वन्नं वदमाणे जाव विविक्कतववंनचेराणं देवाणं वन्नं वदमाणे ॥ इति मूलसूत्रम् ॥ अस्य व्याख्या ॥ पंचहीत्यादि सुगमम्। नवरं डुलना वोधिर्जिनधर्मो यस्य स तथा तन्नावस्तत्ता तया डुर्लनवोधिकतया तस्यैव वा कर्म मोहनीयादि प्रकुर्वंति वध्नंति अर्हतामवर्णमश्लाघ्यं वदन् यथा। नत्थी अरिहंतत्ती, जाणंतो कीस ढुंजए नोए ॥ पाहुडिय ज्वजीवइ, समवसरणादिरूपाए ॥ १ ॥ एमाइजिणाणअवर्णो, नच तेनानूवंस्तत्प्रणीतप्रवचनोपलब्धेर्नापि नोगानुनवनादेर्दोषोऽवश्यवेद्यशातस्य तीर्थकरनामादिकर्मणश्च निर्जरणोपायत्वात्तस्य तथा वीतरागत्वेन समवसरणादिषु प्रतिवंधान्नावादिति तथा अर्हत्प्रज्ञप्तस्य धर्मस्य श्रुतचारित्ररूपस्य प्राकृतनाषानिवद्धमेतत् । तथा किं चारित्रेण दानमेव श्रेयः इत्यादिकमवर्णं वदन् उत्तरं चात्र । प्राकृतनाषात्वं श्रुतस्य न डुष्टं वालादीनां सुखाध्येयत्वेनोपकारित्वात्तथा चारित्रमेव श्रेयो निर्वाणस्यानंतरहेतुत्वादिति आचार्योपाध्यायानामवर्णं वदन् यथा वालोयमित्यादि नच

बालत्वादिदोषो बुद्ध्यादिभिर्वृद्धत्वादिति तथा चत्वारो वर्णाः प्रकाराः श्रमणादयो यस्मिन्स तथा स एव स्वार्थिकाण्विधानाच्चातुर्वर्ण्यं तस्य संघस्यावर्णं वदन् यथा कोयं संघो यः समवायबलेन पशुसंघ इवामार्गमपि मार्गीकरोतीति नचैतत्साधुज्ञानादिगुणसमुदायात्मकत्वात्तस्य तेन च मार्गस्यैव मार्गीकरणादिति तथा विपक्कं सुपरिनिष्ठितं प्रकर्षपर्यंतमुपगतमित्यर्थः। तपश्च ब्रह्मचर्यं च भवान्तरे येषां, विपक्कं वा उदयागतं तपो ब्रह्मचर्यं तद्धेतुकं देवायुष्कादिकं कर्म येषां ते तथा तेषामवर्णं वदन् न संत्येव देवाः कदाचनाप्यनुपलभ्यमानत्वात् किंवा तैर्विटैरिव कामासक्तमनोभिरविरतैस्तथा निर्निमेषैरचेष्टैश्च म्रियमाणैरिव प्रवचनकार्यानुपयोगिभिश्चेत्यादिकं इहोत्तरं संति देवास्तत्कृतानुग्रहोपघातादिदर्शनात् कामासक्ताश्च मोहशातकर्मोदयादित्यादि। अभिहितं च। एत्थ पसिद्धीमोहणी, यसायवेयणियकम्मउदयाउ॥ कामसत्ताविरई, कम्मोदयउवियनतेसिं ॥ १ ॥ अणमिसदेवसहावो, निचेट्ठाणुत्तराइकयकिच्च ॥ कालाणुभावतिछु स्सइंपि अन्नछ कुव्वंतित्ति ॥ २ ॥ तथा अर्हतां वर्णवादो यथा। जियरागदोसमोहा, सव्वन्नुतियसनाहकय

पूया ॥ अच्चंतसच्चवयणा, सिवगइगमणा जयंति जिणा ॥ १ ॥ इति अर्हत्प्रणीतधर्मवर्णो यथा। वत्तु पयासणसूरो, अइसयरयणाणसायरो जयई ॥ स व्वजयजीववंधुर, वंधूदविहोइ जिणधम्मो ॥ २ ॥ आचार्यवर्णवादो यथा। तेसि नमो तेसि नमो, जावेण पुणो वि तेसि चेव नमो ॥ अणुवकयपरहियरया, जे नाणं देंति जवाणं ॥ ३ ॥ चतुर्वर्णश्रमणसंघवर्णो यथा। एयंमि पूइयंमि, नत्थि तय जं न पूइयं होई ॥ जवणेवि पूयणिज्जो, न गुणी संघाउ जं अन्नो ॥ १ ॥ देववर्णवादो यथा। देवाण अहो सीलं, विसयविस मोहिया वि जिणजवणे ॥ अत्थरसाहिंपि समं, हासा ई जेण नकरंतित्ति ॥ १ ॥

इस गणांगके पाठमें प्रथम पाठके पांचमें स्थान में लिखा हैकि देवतायोंके जो अवर्णवाद वोले सो डुर्लजवोधि पणेका कर्म उपार्जन करे. तिसकी टिकाकी जाषा यहां कहते हैं. तथा (विपक्कं) अतिशय करके पर्यंतकों प्राप्त हूआ है तप और ब्रह्मचर्य जवां तरमें जिनका अथवा (विपक्कं के०) उदय प्राप्त हूवा है तप और ब्रह्मचर्यरूप हेतुसें देवताका आउ प्कादि कर्म जिनके, तिन देवतायोंका अवर्णवाद

बोले. यथा कदापि देखनेमें न आवनेसें देवताही नही है, जेकर होवेंगेनी तो वेनी विट पुरुप अर्थात् अत्यंत कामी पुरुषकी तरें, कामासक्त होनेसें, किस कामके है? तथा वो देव अविरति है, तिनसें हमारा क्या प्रयोजन है तथा जिनकी आंखो मिचती नही है इस वास्ते चेष्टा करके रहित होनेसें मृततुल्य पुरुषके समान है, जैनशासनमें किसीनी काममें नही आते है, इत्यादि अनेक प्रकारसें पूर्वोक्त देवतायोंका अवर्णवाद वोले सो जीव ऐसा महामोहनीय कर्म बांधे कि जिसके प्रनावसें जैनधर्म तिस जीवकों प्राप्त होना डुर्लन हो जावे क्योंके यहां टीकाकार श्री अनयदेवसूरिजी उत्तर देते है. देवता है तिनके करे अनुग्रह उपघातके देखनेसें, और कामासक्त जो देवता है, सो शाता वेदनीय और मोहनीय कर्मके उदयसें है, अरु अविरति कर्मके उदयसें वे विरति नही है, और जो आंख नही मीचते है सो देवनवके स्वनावसें है, और जो अनुत्तर विमानवासी देव निश्चेष्ट चेष्टारहित है, वे देव कृतकृत्य हूए है अर्थात् उनकूं कुबनी बाकी करना नही है, इस वास्ते निश्चेष्ट है. और जो तीर्थकी प्रनावना नही करते है सो का

लदोष है अन्यत्र करतेनी है. इस वास्ते देवतायोका अवर्णवाद बोलना युक्त नही है.

अब तिन देवतायोंके गुणग्राम करे तो-[सुलन्न बोधि होवे जैसेकें देवतायोंका कैसा अन्न आश्चर्य कारी शील है, विषयके वश विमोहित जिनका मन है, तोनी जिनन्नवनमे अपत्सरा देवाङ्गनायोंके साथ हास्यादिक नही करते है, इत्यादिक गुण बोले तो सुलन्नबोधिपणेका कर्म उपार्जन करे ॥

इस वास्ते जो कोइ, जैनसिद्धांतके रहस्यका अजाण होकर नोले श्रावकोंके आगें, सम्यक्दृष्टी जो शासनदेवता अरु श्रुतदेवतादिक है, तिनकी निंदा करके तिनोका कायोत्सर्ग करणा और थुइ कहनी तिसका निषेध करता है और यह कृत कर ऐसे उनकों दूर रखता है, सो जीव डुर्लन्नबोधि होनेका कर्म उपार्जन करता है ॥

तथा श्रीआवश्यकचूर्णिमें दशपूर्वधारी श्रीवज्र स्वामीजीने क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करा ऐसा लेख है, वो पाठ उपर लिख आए है तिसमें जेकर कोइ मुग्ध जीव ऐसा कहे के श्रीवज्रस्वामीजीने तो एकही वार कायोत्सर्ग कराथा, परंतु प्रतिदिन

कायोत्सर्ग्ग नही कराथा. तिस्का उत्तर लिखते हैंके श्रीवज्रस्वामीजीतो अतिशय युक्त थे तिस वास्तें उनकूं तो एकही वार कायोत्सर्ग्ग करनेसें क्षेत्रदेवता प्रगट होके आज्ञा दे गइथी, और अबतो नित्य कर ते है तोनी क्षेत्रदेवता प्रत्यक्ष नही होती है इस वा स्ते श्रीवज्रस्वामिजीकी बराबरी करके जो प्रतिदिन कायोत्सर्ग्ग करनेका निषेध करें तिसकों सब मूर्खोंमे शिरोमणि जानना, और प्रतिदिन क्षेत्रदेवतादिकका जो कायोत्सर्ग्ग करते है, सो बात जीवानुशासन ग्रं थकी साक्षीसें करते है तिस्का पाठ हम उपर लिख आए है.

तथा दूसरा फेर आवश्यक सूत्रकानी पाठ लिख कर दिखाते है, सो पाठ यह है ॥ यडुक्तं ॥ ममम्ं गलमरिहंता, सिद्धा साहू सुहं च धम्मो अ ॥ सम्म द्दिठी देवा, दिंतु समाहिं च बोहिं च ॥ ४७ ॥ मम इत्यात्मनिर्देशो मंगलं दव्वमंगलं नावमंगलं च दव्वमंगलं दहियरकयाइणो, नावमंगलं एगंतियमच्चंतियं सारी राइपच्चूहोवसामगत्तेण मांगलयति नावात् मंगं वा लातीत्यादिशब्दार्थत्वप्रवृत्तेश्च इदमेवार्हदादिविषयं पं चविधं ॥ तदेवाह ॥ अरिहंता सिद्धा साहूसुयं च

धम्मो य तह ॥ अठविहं पि य कम्मं, अरिन्नूयं होइ सवजीवाणं ॥ तं कम्ममरिहंता, अरिहंता तेण वुच्चं ति ॥ तथा पिञ् बंधने सितं बद्धं ध्मातं दग्धं कर्म यैस्ते सिद्धाः तथा ज्ञानादिभिर्निर्वाणं साधयंतीति साधवः ॥ श्रूयतइति श्रुतम् ॥ अंगोपांगादिर्विविधभेद आगमः ॥ दुर्गतिपतज्जंतुधारणाद्धर्मः ॥ चशब्द. समुच्चयार्थः। इह चान्यत्र चत्वार्येव मंगलानि पठ्यंते ॥ इह तु अनुष्ठानरूपधर्मस्य प्रक्रान्तत्वाद्धर्मस्यापि पंचमंगलतया विशेषभणनमदोपायेति तथा सम्यगविपरीता दृष्टिस्तत्त्वार्थदर्शनं येषां ते सम्यग्दृष्टयो देवा यक्षांबाब्रह्मशांति शासनदेवतादयस्ते । किमित्याह। ददतु यच्छंतु। कामित्याह समाहिं वा बोहिं च। तत्र समाही दुविहा दवसमाही भावसमाही य । दवसमाही जेसिं दवाणं परुप्परं अविरोहो जहा दहिगुडाणं खीरसक्कराणं सिणिद्धबंधवाणं सुहीणं कायस भावोसिरणे वा एमाइ ॥ भावसमाही अरत्तदुठस्स असिणेहाइआउलस्स असंजोगविओगविहुरस्स अह रिसविसयाउरस्स सायरसरोवरसरिसस्स सुपसन्नमणस्स समणस्स सावगस्स वा समाहाणं इयं हि मूलं सवधम्माणं दुमाणं व खंधोपसाहाणं व सा

हा फलस्सेव पुप्फं अंकुरस्सेव बीयं बीयस्सेव सु
भूमि एईएविणासु बहुंपि अणुगणं कल्लाणुप्पाणप्पायं
अआ चेव समाही पढ़िज्जइ ॥ सायसमाहीमणोवी
सब्वया एतंच मणोसारीरिगमाणसेहिं खमरवासससा
ससोसई साविसायपियविप्पओगसोगपमुहेहिं विहुरि
बई अउपरमहउ ऽसमाहिपत्नणाए एएसिंपि निरोहो
पत्थिउ हवइत्ति ॥ नणु जेसम्मद्दिठिणो एवं पढ़िया समा
हिबोहिदाणसमत्था ? समत्था जइ असमत्थातो किं
तव पत्थणाए निप्फलत्ताए अह समत्था तो किं डुरन्न
वअनवाणं न दिंति ॥ अह मन्नसे जोगाणं चेव दाउं
समत्था न अजोगाणं तो खाइंसजोगयच्चियपमाणं
किं तेहिं अयागलथणाकप्पेहिं ॥ अयरिउ जणइ ॥ सच्च
मेयं किंतु अम्हे जिणमइणो जिणमयं सियवायप्प
हाणं ॥ सामग्री वै जनिकेति वचनात् तत्र घटनि
ष्पत्तौ मृदो योग्यतायामपि कुलालचक्रचीवरदवरदं
माद्योपि तत्र कारणं एवमिहापि जीवस्य योग्यता
यामपि तथा तथा प्रत्यूहनिराकरणेन समाधिबोधि
दाने देवा अपि निमित्तं भवंतीत्यतः प्रार्थनापि फलवती
त्यलं प्रसंगेनेति गाथार्थः ॥

अब इस चूर्णिकी नाषा लिखते हे ॥ मम मंगल इत्यादि गाथाकी व्याख्या ॥ मम ऐसा आत्मनिर्देश विषे है, अरु मंगल जो हे सो दोप्रकारका हे तिस्में एक ड्व्यमंगल और दूसरा नावमंगल तिनमें ड्व्यमंगल जो है सो दधि अक्षतादिक हे, और नावमंगल जो है सो एकांतिक अत्यंतिक है, अर्थात् एकांत सुखदायि और अंतरहित हे. शारीरी मानसिक ङ्ःखोंके उपशामक होने करके मेरेकों जो संसारसें दूर करे सो मंगल हे, इत्यादि शब्दार्थ है. यह मंगल अरिहंतादि विषय नेदसें पांच प्रकारके हें सोइ दिखाते हे.

एक अरिहंत, दूसरा सिद्ध, तीसरा साधु, चउथा श्रुत, पांचमा धर्म, तिनमें सर्व जीवोंके शत्रुनूत ऐसे जो अष्टप्रकारके कर्म है तिनका जिनोने नाश करा हे, सो अरिहंत जानना, अरु जिनोने कर्म बंधन दग्ध करे हे वो सिद्ध जानना. तथा जो ज्ञानादि योगकरके निर्वाणकों साधते हे वो साधु जानना. जो सुणीयें सो श्रुत कहना, वो श्रुत अंगोपांगादि विविध प्रकारके आगम जानना, तथा जो ङ्र्गतिमें पडते हूए जीवोंकू धारण करे सो धर्म है, इहां च शब्द जो हे सो समुच्चयार्थमें हे, अन्यत्र चार ही

मंगल कहे है, और यहां अनुष्ठानरूप धर्मका प्रारंभ होनेसें तिस धर्मकों पांचमा अनुष्ठान कहनमें दोष नही है. तथा सम्यग् सो अविपरीत दृष्टी तत्त्वार्थश्रद्धानरूप वो है जिनोकों सो सम्यग्दृष्टी देवता यक्ष, अंबा, ब्रह्मशांति, शासनदेवतादिक जानना. वो क्या करे सो कहते है.

देवो क्या देवे! समाधि और बोधि तहां समाधि दो प्रकारकी है, एक द्रव्यसमाधि, दूसरी भावसमाधि तिसमे द्रव्यसमाधि यह हैकि जिन द्रव्योंका परस्पर अविरोधिपणा है जैसें दधी और गुड, तथा सक्कर (मिसरी) और दूध, स्नेहवंत भाइ और मित्र, मलोत्सर्ग करके मूतना इत्यादिका अविरोध है, और भावसमाधि जो है सो रागद्वेषरहितकों, स्नेहादिसें अनाकूलकों, संयोग, वियोग करके अविधुरकों, हर्षविषाद रहितकों, शरत्कालके सरोवरकी तरें निर्मलमनवाले ऐसे जो साधु वा श्रावक है तिनकों होती है यह समाधिही सर्व धर्मोंका मूल है. जैसें वृक्षका मूल स्कंध है, छोटी साखायोंका मूल वडी शाखायों है, फलोंका मूल फूल है, अंकूरका मूल बीज है, बीजका मूल सुभूमि

है, तैसें सर्व धर्मोंका मूल समाधि है. समाधिविना जो अनुष्ठान है सो सर्व अज्ञान कष्ट रूप है, इस वास्ते पूर्वोक्त देवतायोंसें समाधि मागते है, वो समाधि तो मनके स्वस्थपणेसें होती है, और मनका स्वस्थपणा तव होवे जव शारीरिक तथा मानसिक, दुःख न होवे, और चूख, खांसी, श्वास, रोग, शोप, ईर्ष्या, विपाद, प्रियविप्रयोग, शोक प्रमुख करके विधुर न होवे, तव स्वस्थपणा होवे. इस वास्ते परमार्थसें समाधिकी प्रार्थनाद्वारें इन पूर्वोक्त उपद्रवोंका निरोध प्रार्थन करा है.

ननु वितर्के. हे आचार्य, सम्यग्दृष्टी देवतायोंकी इसतरें प्रार्थना करनेसें वो देव, वो समाधि वोधि देनेकों समर्थ है? वा नही है? जेकर समर्थ नही होवे तवतो इनोकी प्रार्थना करनी निष्फल है, अरु जेकर समर्थ है तो दुर्नव्य अन्नव्यकोंनी क्यों नही देते है जेकर तुम मानोगेंकी योग्य जीवोंकोंही देनेकूं समर्थ है, परंतु अयोग्य जीवोंकूं देने समर्थ नही है, तवतो योग्यताही प्रमाण हुइ, तव वकरीके गलेके स्तन समान तिन देवतायोंकी काहेकों प्रार्थना करनी चाहियें?

अब इनका उत्तर आचार्य देते है. हे नव्य तेरा कहना सत्य है. किंतु हमतो जैनमति है, और जैनमत स्याद्वादप्रधान है, सामग्री वै जनिकेति वचनात् ॥ तहां घटनिष्पत्तिमें मृत्तिकाके योग्यता होनेसें नी कुंनकार, चक्र, चीवर, मोरा, दंमादिन्नी तहां कारण है. ऐसे यहांन्नी जीवके योग्यताके हूएन्नी ये पूर्वोक्त देवता तिस तिस तरेके विघ्न दूर करनेसें समाधि बोधि देनेमें निमित्तकारण होते है. इस वास्ते तिनकी प्रार्थना फलवती है. इति गाथार्थः ॥ ४७ ॥

इस आवश्यककी मूल गाथामें तथा इसकी चूर्णिमें प्रकट पणे समाधि और वोधिके वास्ते, सम्यग्दृष्टी देवतायोंकी प्रार्थना करनी कही है. तो फेर यह ग्रंथों सब पूर्वाचार्योंके रचे हूए हैं सो किसी प्रकारसें जूग नही हो शकता है, परंतु हमने सुना है कि रत्नविजयजी अरु धनविजयजीने "सम्मद्दिठी देवा" इस पदकी जगें कोइ अन्यपदका प्रक्षेप करा है, जेकर यह कहेनेवालेका कथन सत्य होवे तबतो इन दोनोकों उत्सूत्र प्ररूपण करणेका और संसारकी वृद्धि होनेका नय नही रहा है, यह बात सिद्ध होती है तो अब सज्जनोकों यह विचार रखना चाहीयेंके सूत्रोंका प

दोकों फिरायके तिस जगे दूसरे वाक्य लिखना यह काम करणेसे जो पाप लगे तिस्से जास्ति पाप फेर दूसरे कौनसे काम करनेसे लगता होवेगा? यह काम करणमें कोइन्नी नवन्नीरु पुरुष आपनी सम्मतितो नहीही देवेगा, परंतु खरा अंतःकरणपूर्वक पश्चात्ताप करके इन दोनोकों इस कामसें दूर रहेने वास्ते अवश्य सत्य उपदेश करणेमें क्योंकर तत्पर न रहेगा! अपितु अवश्य रहेगाही. श्रीजिनेश्वर नगवान्के वचन उत्थापन करना यह कुछ सहेज वात नही है, इस्से वो उत्थापक जीव अनंत संसारी वन जाता है, तो फेर जिसके हाथमें सव दर्शनोमें शिरोमणीनूत श्री जैनधर्मरूप चिंतामणि रत्न प्राप्त हूवा तिस्कों वो अपने कदाग्रहके अधीन होके दूर फेक देता है, अरु अपनी मनकल्पितरूप विष्ठाकों उगके हाथमें धारण करता है तिस्कों देखके कोन नव्यजीवकों तिस पामर जीवके पर दयाका अंकूरा उत्पन्न नही होवेगा? अर्थात् निकट नव्यसिद्धियोंकों तो आवश्य करुणा आवेगीही. जव तिसके परकरुणा आवेगी तव वो प्रतिवोधनी अवश्य देवेगा, क्योंकी जेकर कोइ कदाग्रही जो वुज जावे तो उसका काम हो जावे, अरु

बोध करनेवालेकूंनी बडा पूण्योपार्जन रूप लाज हो जावे ऐसा नगवानका कथन है.

हमकों बडा आश्चर्य होताहैकि पाटण खंवातादिक शहेरोमें बडे बडे ज्ञानके नांमागारोंमें ताडपत्रोंके ऊपर पुराणी लिपियोंमे लिखे हूए ग्रंथ मोजुद है तिन सब ग्रंथोंमें सम्मद्दिठ्ठी देवा” यह पद लिखा हूआ है. तो जिस पुरुषकों तिन पदकी जगें नवीन पद प्रक्षेप करतेनी कुछ नय नही आता है, परंतु और इस्सें आनंद मान लेता है तो फेर तिसकों अन्य पाप करणेसेंनी क्या नय होवेगा? जो अन्यायमें आनंद माने तिसकों न्यायवचन कैसें प्रिय लगें?

तथा श्रीपाक्षीसूत्रका पाठ यहां लिखते हैं॥ सुअदेवया नगवई, नाणावरणीयकम्मसंघायं॥ तेसिं खवेउ सययं, जेसिं सुअसायरे नत्ती॥१॥ व्याख्या॥ सूत्रपरिसमाप्तौ श्रुतदेवतां विज्ञापयितुमाह सुअ० श्रुतदेवता संनवति च श्रुताधिष्ठातृदेवता नगवती पूज्या ज्ञानावरणीयकर्मसंघातं ज्ञानघ्नकर्मनिवहं तेषां प्राणिनां क्षपयतु क्षयं नयतु। सततं येषां श्रुतमेवातिगंनीरतया अतिशयरत्नप्रचुरतया च सागरस्तस्मिन् नक्तिर्बहुमाना विनयश्च समस्तीति गम्यते॥

इसकी नाषा लिखते है. सूत्रकी समाप्तिमें श्रुत देवीकों विज्ञापना करते है- सुअ० ॥ श्रुतदेवता श्रुतकी अधिष्ठात्री, देवी नगवती पूजने योग्य तिस्कूं विनंति करते हैके ज्ञानावरणीय कर्मके समूहकों हे श्रुतदेवी तुं निरंतर क्षय कर दे, जिनपुरुषोंके नगवंतनाषित श्रुतसागरविषे नक्ति बहुमान है तिन पुरुषोंके ज्ञानावरणीयकर्मका समूहकों क्षय कर दे. इस पावमें श्रुतदेवीकी विनंति करे तो ज्ञानावरणीयकर्मक्षय होवे, ऐसा कहा है. इसवास्ते जो कोइ श्रुतदेवीका कायोत्सर्ग और तिस्की थुइका निषेध करता है, सो जिनमतके ज्ञानरूप नेत्रोंसें रहित है, ऐसा जानना. परंतु ऐसा नोले लोगोकों न कहनाकि यह हमारी निंदा करी है? परंतु अपने हृदयमें कुछ विचार करके मुखसें कथन करना तो सब तरहेंसें सुखदाइ होवेगा, जिस्सें आपकों बहुत लान होवेगा, उलटा पासा आपका पडा गया है, तिसकों सुलटा करणासो आपकेही हाथ है सो अपवूज जावेगें अरु शुद्धमार्गकी राहपर चलेगें यह हमारा मनोरथ है सो आपकों उत्तम सुखके दाता है.

तथा श्रीआवश्यक चूर्ण्यादिकोंका पाठ॥चाउम्मासियसंवछरिएसु सव्वेवि मूलगुणउत्तरगुणाणं आलोयणं दाऊण पडिक्कमंति खित्तदेवयाए य उस्सग्गं करेंति केइ पुण चाउम्मासिगे सिद्धादेवताए वि काउस्सग्गं करेंति। आवश्यकचूर्णौ० चाउम्मासिए एगे उवसग्ग देवताए काउस्सग्गो कीरति संवछरिए खित्तदेवयाए वि कीरति अप्नहिउ ॥ आवश्यकचूर्णौ। तथा श्रुतदेवाया आगमे महती प्रतिपत्तिर्दृश्यते तथाहि सुयदेवयाए आसायणाए श्रुतदेवताजीए सुयमहिठियं तीए आसायणा नछि साऽकिंचित्करी वा एवमादि आवश्यकचूर्णौ जा दिठिदाणमित्ते ण देइ पणइणनरसुर समिद्धिं ॥ सिवपुररवं आणारयाण देवीइ नमो ॥ आराधनापताकायां, यत्प्रज्ञावादवाप्यंते, पदार्थाः कल्पनां विना ॥ सा देवी संविदे न स्ता, दस्तकल्पलतोपमा ॥ उत्तराध्ययनवृहद्वृत्तौ० प्रणिपत्य जिनवरेंद्रं वीरं श्रुतदेवतां गुरून साधून् ॥ आवश्यकवृत्तौ, यस्याः प्रसादमतुलं संप्राप्य नवंति नव्यजिननिवहाः ॥ अनुयोगवेदिनस्तां प्रयतः श्रुतदेवतां वंदे ॥ अनुयोगद्वारवृत्तौ० ॥ इस उपरले पाठ आवश्यक चूर्णीमें नवनदेवता अरु क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग

करणा कहा है. चातुर्मासीमे एकैक भवनदेवताका कायोत्सर्ग करते है, और संवत्सरीमें भवनदेवता, क्षेत्रदेवताका कायोत्सर्ग करते है यह कथन आवश्यकचूर्णिमें है.

तथा आगममें आवश्यकचूर्णिमे श्रुतदेवताकी विनय भक्ति करनी कही है. सो पाठ ऊपर लिखा है तथा जो श्रुतदेवी दृष्टि देने मात्रसें भगवंतकी आज्ञामें रत पुरुषोंकें नर सुरकी ऋद्धि देती है. यह कथन आराधनापताका ग्रंथमें है.

तथा श्रुतदेवी हमको ज्ञानकी दात्री होवे यह कथन श्रीउत्तराध्ययनकी वृहद्वृत्तिमें है.

तथा जिनवरेंद्र श्रीमहावीरकों,तथा श्रुतदेवताकों तथा गुरुओंकों नमस्कार करके आवश्यक सूत्रकी वृत्ति रचता हूं ॥ इति हारिभद्रीयावश्यकवृत्तौ ॥

तथा जिन श्रुतदेवीका अतुल्य प्रसाद अनुग्रह करके भव्य जीव जो है सो अनुयोगके जानकार होते है तिस श्रुतदेवीकों में नमस्कार करता हूं, यह कथन श्रीअनुयोगद्वारकी वृत्तिमें है. तथा श्रीनिशीथचूर्णिके शोलमें उद्देशेमें भाष्यचूर्णिमे साधुयोंकों वनदेवताका कायोत्सर्ग करना कहा है, सो पाठ यहां

लिखते हैं॥ताहे दिसा नागममुणंता बालवुड्ढ गछस्स रस्कणछाए वणदेवताए काउस्सग्गं करेंति ॥ इत्यादि.

तथा श्रीहरिजद्रसूरिजीने श्रुतदेवताकी चौथी थुइ रची है. " आमूलालोलधूली " इत्यादि, यह थुइ जैनमतमें प्रसिद्ध है.

तथा श्रीआमराजा ग्वालियरका तिस्का प्रतिबोधक श्रीबप्पजट्टसूरि महाप्रजावक हूए हैं तिनोंका जन्म विक्रम संवत् ८०२ में हूआ है तिनोने एकैक तीर्थंकरके नामसें तथा संबंधसें प्रथम थुइ, दूसरी सर्व तीर्थंकरोकी थुइ, तीसरी श्रुतज्ञानकी थुइ, अरु चौथी श्रुतदेवी, विद्यादेवी आदिककी थुइ इसतरें चौवीस चोक छांनवें थुइयां रचीयां है, तिनमें सर्वत्र चोथी थुइयोंमें अनुक्रमसें इन देवी देवतायोंकी स्तवना करी है. तहां श्रीरुषजदेवके संबंधकी चौथी थुइमें वाग्देवताकी थुइ है. श्रीअजितनाथके साथ अपराजिता देवीकी थुइ है, ऐसेही रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रशृंखला, वज्रांकुशी, अप्रतिचक्रा, काली, मानवी, पुरुषदत्ता, महाकाली, गौरी, गांधारी, मानसी, महामानसी, काली, महाकाली, वैरोट्या, वाग्देवता, श्रुतदेवी, गौरी, अंबा, यक्षराट्, अंबिका,इसतरें अनु

क्रमसें चौवीस थुइयोंमें इन देवतायोंकी स्तवना करी है. सो ग्रंथ गौरवताके जयसें सर्व थुइयां तो यहां नही लिखते है, जेकर किसीकों देखनी होवे तो ग्रंथ मेरे पास है सो आकर देख लेनी. तथापि तिनमेसें बावीशमें श्रीनेमिनाथके संबंधकी चार थुइयां यहां लिख देते हैं. तथाच तत्पाठः ॥ चिरपरिचितलक्ष्मी प्रोज्झ्यसिद्धौरतारा, दमरसदृशमत्यी वर्जितां देहि नेमे ॥ नवजलनिधिमज्जज्जंतुनिर्व्याजबंधो दमरसदृशमत्यी वर्जितां देहि नेमे ॥ ८५ ॥ विदधदिह यदाज्ञां निर्वृतो शं मणीनां सुखनिरतनुतानोनुत्तमास्ते महांतः ॥ ददतु विपुलनद्यां शग् जिनेशः श्रियं स्वः सुखनिरतनुतानोनुत्तमास्ते महांतः ॥ ८६ ॥ कृतसमुतिबलर्द्धिध्वस्तरुग्मृत्युदोपं परममृतसमानं मानसं पातकांतं ॥ प्रतिहृढरुचि कृत्वा शासनं जैनचंद्रं परममृतसमानं मानसं पातकांतं ॥ ८७ ॥ जिनवचनकृतास्था संश्रिता कम्रमाम्रं, समुदित सुमनस्क दिव्यसौदामनीरुक् ॥ दिशतु सततमंबा नूतिपुष्पात्मकं नः समुदितसुमनस्कदिव्यसौदामनीरुक् ॥ ८८ ॥

तथा श्रीजिनेश्वरसूरिका शिष्य और नवांगी वृत्ति कारक श्रीअभयदेव सूरिजीका गुरु जाइ, संसाराव

स्थामें श्रीधनपाल पंमितका सगा नाइ, संवत् १० ९ए के लगनगमें श्रीशोजनाचार्य महामुनि हूए हैं, तिनोने श्रीबप्पनट्ट सूरिजीकी तरें चौवीस चोक गं नवे थुश्यां रची है तिनमेंनी चौवीशे चोथी थुश्योंमें अनुक्रमसें श्रुतदेवता, मानसी, वज्रशृंखला, रोहि णी, काली, गंधारी, महामानसी, वज्रांकुशी, ज्वल नायुधा, मानवी, महाकाली, श्रीशांतिदेवी, रोहिणी, अच्युता, प्रज्ञप्ति, ब्रह्मशांति यक्ष, पुरुषदत्ता, चक्रधरा, कपर्दियक्ष, गौरी, काली, अंबा, वैरोट्या, अंबिका, इ नकी स्तवना करी है.

अब नव्य जीवोंकूं विचारणा चाहियें की जब श्री जिनेश्वरसूरिके उपदेशसें तथा पूर्वाचार्योंकी परंपराय सें, पूर्वाचार्यसम्मत चोथी थुइ है तो तिसका निषेध करणा यह जिनाज्ञाधारक प्रामाणिक पुरुषका लक्ष ण नही है. क्योंकी जो पुरुष पूर्वाचार्योंकी आचर णाका उछेद करे सो जमालिकी तरें नाशकों प्राप्त होवे. ऐसा कथन श्रीसूयगडांग सूत्रकी निर्युक्तिमें श्री नद्रबाहु स्वामीनें करा है. सो पाठ यहां लिखतें है ॥ आयरिए परंपराए, आगयं जो छेय बुद्धिए ॥ कोइ

वोछेय वाइ, जमालिनासं स नासेइ ॥ १ ॥ अर्थः–
आचार्योंकी परंपरायसें जो आचरणा चली आती
होवे तिस्को उछेद करने अर्थात् न माननेकी जो बु
ध्दि करे, सो जमालिकी तरें नाशकों प्राप्त होवे.

तथा श्रीगणांगकी टीकामें श्रुतज्ञानवृध्दिके सात
अंग कहे है. सूत्र, निर्युक्ति, जाष्य, चूर्णि, वृत्ति, परं
परा, अनुजव, इनकों जो कोइ छेदे सों दूरजव्य अर्था
त् अनंतसंसारी है, ऐसा कथन पूर्वपुरुषोंने करा है.

इस वास्ते रत्नविजयजी अरु धनविजयजी जेकर
जेनशैली पाकर आपना आत्मोध्दार करणेकी जि
ज्ञासा रखनेवाले होवेगे तो मेरेकों हितेछु जानकर
ओर क्वचित् कटुक शब्दके लेख देखके उनकेपर हित
बुध्दि जाके किंवा जेकर बहुते मानके अधीन रहा होवे
तो मेरेकों माफी बक्षीस करके मित्र जावसें इस पूर्वो
क्त सर्व लेखकों वांच कर शिष्ट पुरुषोंकी चाल चलके
धर्मरुपवृक्षकों उन्मूलन करनेवाला ऐसा तीन थुइयों
का कदाग्रहकों छोडके, किसी संयमि गुरुके पासचारित्र
उपसंपत् लेके शुध्द प्ररूपक हो कर इस जरतखंमकी जू
मिकों पावन करेंगे तो इन दोनोका कल्याण शीघ्रही हो
जावेगा यहा हमारा आशीर्वाद है,बहुलिखनेन किम् ॥

अथ

निकट उपकारी गणिवर्य्य श्रीमन्मणिविजयजी महाराजकी किंचित् गुरुप्रशस्ति लिखते है.

॥ अनुष्टुब् वृत्तम् ॥

तपागच्छे जगद्वंद्ये, जज्ञिरे बुद्धिशालिनः ॥
श्रीमन्मणिविजयाख्या, गुरवः संयमे रताः ॥ १ ॥
यस्य धर्मोपदेशेन, निर्मलेन कति जनाः ॥
सम्यक्त्वं लेभिरे साधु, धर्मं च लेभिरे कति ॥२॥
तेषां पट्टांबरे चंद्रा, सूरिशिष्यप्रशिष्यकाः ॥
श्रीमद्बुद्धिविजयाख्या, बभूवुर्बुद्धिसागराः ॥ ३ ॥
निःसंगा निर्ममाः क्षांता, ये च पांचालनीवृति ॥
ढुंढकाख्यं मतं हित्वा,जाताः संवेगभाजनम् ॥४॥
तच्छिष्येण मयानंदविजयेन सविस्तरः ॥
ग्रंथोऽयं गुफितः सम्यक्, चतुर्थस्तुतिनिर्णयः ॥५॥
बुद्धिमांद्यवशात् किंचित्, यदशुद्धमलेखि तत् ॥
मात्सर्य्यं संपरित्यज्य, शोधयध्वं मनीषिणः ॥६॥

इति न्यायाम्भोनिधि–श्रीमद्–आत्मारामजी (आनंदविजयजी) महाराजविरचितः चतुर्थस्तुतिनिर्णयः॥

॥ समाप्तमिदम् ॥